Chap-3

तृतीय- अध्याय

आधुनिक हिन्दी कविता में सांस्कृतिक चेतना

आधुनिक हिंदी कविता में सांस्कृतिक चेतना :

साहित्य एक सामाजिक संस्था है। इसका माध्यम है भाषा। जो एक सामाजिक सर्जना है।[1] साहित्य से ही किसी काल की यथार्थता का सही बोध होता है। यदि युग-विशेष की साहित्यिक सामग्री उपलब्ध न हो तो उस काल की सांस्कृतिक अन्तश्चेतना का ज्ञान होना कठिन है। साहित्यकार अपनी युगानुकूल परिस्थितियों को अपनी कल्पना शक्ति और भाव कोश के माध्यम से समन्वित रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयास करता है, क्योंकि स्वयं कवि भी समाज का एक सदस्य होता है। उसकी एक विशेष सामाजिक भूमिका होती है।--- साहित्य का एक विशेष प्रयोजन भी होता है, जिसे विशुद्ध रूप से वैयक्तिक नहीं माना जा सकता,[2] किन्तु साहित्यकार अपनी वैयक्तिक विशेषताओं से साहित्य को यथार्थ व सशक्त रूप देता है। साहित्य और समाज के पारस्परिक सम्बन्धों की चर्चा बोनाल्ड के एक वाक्य से शुरू की जाती है - 'साहित्य समाज की अभिव्यक्ति है' इसका यह अर्थ लगाना गलत है कि साहित्य में समकालीन सामाजिक स्थिति की यथातथ्य झलक होती है। इसको इस रूप में लिया जा सकता है कि साहित्य समाज के कुछ पक्षों का चित्रण करता है।[3] अत: यह कहा जा सकता है कि कुछ ~~पदार्थों का चित्रण करता~~ साहित्य सामाजिक प्रक्रिया का प्रतिबिम्ब मात्र नहीं है, अपितु समग्र इतिहास का सार तत्त्व और निचोड़ है। साहित्यकार समाज से प्रभावित ही नहीं होता, वरन् वह उसे प्रभावित भी करता है। वह जीवन की प्रस्तुति ही नहीं करता, अपितु वह उसे नया रूप, नयी गति तथा नयी दिशा भी देता है।

जन-चेतना के जागरण में साहित्य के योगदान पर विचार करें तो उदाहरण स्वरूप हम कह सकते हैं कि स्काटलैण्ड में वाल्टर स्काट के, पोलैण्ड में हेनरी शेनक्येविच और चेकोस्लाविया में इन्येइस जायरासेक के ऐतिहासिक उपन्यासों ने राष्ट्रीय गौरव को बढ़ाने में और ऐतिहासिक घटनाओं की याद जगाने में बहुत

महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।[4] क्योंकि साहित्य की सर्जना विशिष्ट सामाजिक - सांस्कृतिक प्रक्रिया में हुआ करती है। जिसकी पुष्टि करते हुए रेनेवेलेक और आस्टिन वारेन ने लिखा है कि हैरियट बीचर स्टोव नामक अमेरिकी उपन्यास लेखिका के उपन्यास 'अंकल टाम्स केबिन' ने दासों के प्रति अपार सहानुभूति दिखायी थी और यह कहा जाता है कि अमेरिका के उत्तरी राज्यों में गृहयुद्ध के माध्यम से जो आक्रोश फैला, उसका श्रेय उक्त उपन्यास को है।[5] हिन्दी कविता का आधुनिक युग भी जीवन द्रष्टा कवियों की प्रबुद्ध चेतना के कारण एक स्वस्थ दृष्टि का बोध कराकर राष्ट्रीय जागरण को गतिशील बनाने में सहायक हुआ है। पूर्ववर्ती अध्याय में आधुनिक काल के सांस्कृतिक पुनर्जागरण के जिन पक्षों पर विस्तार से विचार किया गया है, उनके फलस्वरूप आधुनिकता की नींव नये- जीवन-बोध पर पड़ी।

आधुनिक काल के प्राणवान लेखकों ने अपने साहित्य के माध्यम से युगीन स्थिति के यथातथ्य व व्यंजक चित्र अंकित किये हैं। परंपरागत रूढ़ियों को तोड़कर एक नवीन दिशा का संधान एवं संकेत इस युग के साहित्य से ही हो सका। सामाजिक विषमताओं से उत्पन्न आक्रोश की भावना को कवियों और लेखकों ने रूपाकार प्रदान किया और सामाजिक विषमताओं रूढ़िवादिता, पारम्परिक मान्यता आदि के बंधन क से अपने आपको मुक्त कर आधुनिक हिन्दी साहित्य को वह उन्मुक्त प्रवाह दिया, जो इस युग से पूर्व अज्ञात था। इस उन्मुक्त चिन्ता धारा के प्रवर्तन का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को दिया जा सकता है, क्योंकि वस्तुत: उन्हीं से आधुनिक साहित्य का आरंभ माना जाता है। आधुनिक हिन्दी कविता के क्षेत्र में सर्वप्रथम भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने नवीनता का सूत्रपात किया। उन्हें आधुनिक हिन्दी साहित्य का सूत्रधार कहा जाता है। भारतेन्दु युग रूढ़िबद्ध एवं परंपरागत संकीर्णता से मे मुक्त व्यापक समसामयिक दायित्व का अनुभव कर चुका था। इसी के परिणाम स्वरूप कतिपय ऐसे तत्त्वों का साहित्य सर्जना में सन्निवेश हुआ।

जो साहित्यिक पुनरुत्थान के प्रेरक मंत्र कहे जा सकते हैं । साहित्य और समाज में नवीन प्रवृत्ति या विचारधारा के विकास एवं सम्यक् प्रतिष्ठा में दीर्घकालीन चेतना तथा साधना अपेक्षित है । अत: विवेचनगत सुविधा के विचार से आधुनिक हिन्दी कविता की सांस्कृतिक चेतना को निम्नलिखित युग खण्डों में विभाजित - करके प्रस्तुत किया जा रहा है ।

1- भारतेन्दु युग	2- द्विवेदी युग
3- छायावाद युग	4- छायावादोत्तर युग

भारतेन्दु युग : सांस्कृतिक चेतना का आरम्भिक युग :

यह उल्लेखनीय है कि पूर्ववर्ती अध्याय में विवेचित सांस्कृतिक पुनर्जागरण तथा ब्रिटिश शासन के कारण पाश्चात्य सम्पर्क ने आधुनिक प्रवृत्तियों की पीठिका का निर्माण किया । भारतेन्दु युग का आरंभ लगभग इसी समय होता है । भारतेन्दु-युगीन साहित्य में भी ये प्रवृत्तियाँ सामाजिक सुधार और मानवतावादी भावना, राजनीतिक स्वतंत्रता और राष्ट्रीयता की चेतना तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान आदि की भाव धारा में लक्ष्य की जा सकती हैं । अत: भारतेन्दु युग आधुनिक हिन्दी साहित्य का शिलान्यास काल था । इसके साथ ही यह संक्रमण काल भी था - नवीनता के साथ-साथ पुरानी परंपरावादी प्रवृत्तियाँ भी चल रही थी । अत: तत्कालीन हिन्दी कविता में इन दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों को साथ-साथ देखा जा सकता है ।

भारतेन्दु युग के काव्य की सांस्कृतिक चेतना को व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए यह आवश्यक है कि हम देखें कि उस युग के काव्य में राजनीतिक, आर्थिक,

सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक, आचार- विचार विषयक राष्ट्रीयता आदि से सम्बंधित विचारों को किस प्रकार अभिव्यक्ति मिली है और उसकी समग्रता में किस प्रकार की चेतना का उदय हुआ है, जिसने समग्र परिवेश को प्रभावित करके नवीन सांस्कृतिक आयामों का सूत्रपात किया । उपर्युक्त विवेचन के अंतर्गत इस युग की सांस्कृतिक चेतना के जिन पांच आयामों को दृष्टिगत किया गया है उन पर यहाँ क्रमश: विचार किया जा रहा है ।

सामाजिक सुधार और मानववादी दृष्टिकोण :

भारतेन्दु युग का भारतीय समाज जड़ हो चुका था, भारतेन्दु की प्रसिद्ध कविता 'देखी तुमरी कासी' और प्रतापनारायण मिश्र के 'कानपुर वर्णन' में तत्कालीन समाज की वस्तुस्थिति के बड़े ही यथार्थ चित्र खींचे गये हैं ।[6] इनके अतिरिक्त अन्य अनेक कविताओं में समाज के जर्जर स्वरूप, रूढ़ियों, परंपराओं एवं सामाजिक विषमताओं के अत्यन्त मार्मिक चित्र अंकित किये गये हैं । सामाजिक विकास एवं सामाजिक विकृतियों का उन्मूलन दोनों साहित्य के लक्ष्य हो सकते हैं । हिन्दी साहित्य में सबसे पहले भारतेन्दु युग के काव्य में इस प्रकार की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । इस काल के कवियों ने प्रत्यक्षत: सामाजिक विकृतियों, मिथ्याडम्बरों एवं धार्मिक पाखण्डों का साक्षात्कार किया और उन पर खुलकर प्रहार किया । इससे प्रकट है कि इस युग के कवियों का प्रमुख उद्देश्य हिन्दू समाज का सुधार करना था और उन्होंने इसी दृष्टि से साहित्यिक सर्जना की । इसके सम्बंध में विचार व्यक्त करते हुए डॉ0 रामविलास शर्मा ने लिखा है- 'भारतेन्दु युग का साहित्य जनवादी इस अर्थ में है कि वह भारतीय समाज के पुराने ढाँचे से संतुष्ट न होकर उसमें सुधार भी चाहता है । वह केवल राजनैतिक स्वाधीनता का साहित्य न होकर मनुष्य की एकता, समानता और भाई-चारे का भी साहित्य है । भारतेन्दु स्वदेशी आंदोलन के ही अग्रदूत न थे, वे समाज सुधारकों में भी प्रमुख थे । स्त्री शिक्षा, विधवा-विवाह, विदेश-यात्रा आदि के वे समर्थक थे ।[7]

सामाजिक कुरीतियों में से एक कुरीति बाल-विवाह भी है। जीवन पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। भारतेन्दु युग के कवियों की समाज-सुधार की यह भावना राजा राममोहन राय, दयानन्द तथा विवेकानन्द आदि से मिली, जिसकी विस्तृत चर्चा हम पूर्ववर्ती अध्याय में कर चुके हैं। प्रतापनारायण मिश्र ने बाल-विवाह को ध्यान में रखते हुए लिखा है -

बाल-विवाह ने बल नहिं रक्खा चलते काया डोली है।
नहिं आने की मुख पर लाली वृथा बिगाड़ी रोली है।।[8]

विधवा के पुनर्विवाह के प्रश्न पर भी इस युग के कवियों ने गंभीरता-पूर्वक विचार किया है। उन्होंने समाज के कल्याण के लिए तथा विधवाओं के मनस्ताप को दूर करने के लिए उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाने के लिए विधवा-विवाह का अनुमोदन किया है। राधाचरण गोस्वामी इस पर लिखते हैं -

यद्यपि जनमी उच्च कुल धन जन मान अनेक।
एक प्राण पति के बिना गति मति गई विवेक।।
कौन पाप मैंने कियो भयो बाल वैधव्य।
अरे दई! रे निरदई धिक् -धिक तेरो कर्तव्य।।[9]

उपर्युक्त युक्ति में विधवा के प्रति गहरी संवेदना है। समाज में विधवा नारी का सारा जीवन दुःख की गाथा हो जाता है। जीते-जी वह मृत-तुल्य रहती है, तथा उसे मान-प्रतिष्ठा भी नहीं मिलती है। इसी प्रकार बाल-विधवाओं की दयनीय दशा की श्री पाठक ने भी करुण व्यंजना की है -

दुःखी बाल विधवाओं की जो है गति।
कौन सके बतला किसने किसकी है मती।

जिन्हें जगत की सब बातों से आन है ।
दु:ख सुख मरना-जीना एक समान है ।
जिनको जीते जी दी गयी तिलाजंली ।
उनकी कुछ हो दशा किसी को क्या पड़ी ।[10]

मदिरापान और मांस भक्षण पर भी इस युग के कवियों ने खुलकर प्रहार किया है । मदिरापान से नैतिक पतन क तो होता ही है साथ ही मनुष्य अधोध: गिरता जाता है । समाज में वह हेय दृष्टि से देखा जाता है तथा उसकी मान-मर्यादा जाती रहती है । इससे मनुष्य की ही दुर्गति नहीं होती, वरन् समाज की भी दुर्गति होती है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इसी भाव को एक मुकरी में इस प्रकार व्यक्त किया है -

मुख जब लागे तब नहिं छूटै,
        जाति, मान, धन सब कुछ लूटै,
पागल करि मोहि करे खराब,
        क्यों सखि सज्जन नहिं ~~स्स्न~~ सराब ।।[11]

प्रेमघन ने मदिरापान के दुष्परिणाम का उल्लेख इस प्रकार किया है -
मद्यपान सों मुर्छित बुहकत सबै सिंगार ।
हा या भारत की की करी दशा क्वन करतार ।।
जहं हम संध्या श्राद्ध अरु तरपन पूजन कीन ।
तहं रोज कुकरम ये पशु पाप प्रवीन ।।[12]

इस युग के कवियों ने सामाजिक बुराइयों पर दृष्टिपात ही नहीं किया था, वरन् उन्होंने उन्हें समाज से उन्मूलित करने के लिए प्रयास भी किया था तथा

अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से जन-समुदाय को उद्बुद्ध भी किया था। इस जन-जागरण में उन्हें अच्छी सफलता भी मिली थी। लोगों को यह बोध हो चला था कि सामाजिक विकृतियों को दूर किये बिना समाज को विकासोन्मुख बनाना संभव नहीं है। समाज की इन समस्त विकृतियों की ओर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'भारत- दुर्दशा' में इंगित किया है।[13] उनकी दृष्टि में ये सब धार्मिक और सामाजिक कुरीतियाँ हैं - शैव, शाक्त और वैष्णव सम्प्रदाय, अनेक जातियाँ, ऊँच-नीच की भावना, खान-पान का वर्णन, जन्मपत्री मिलाकर विवाह करने की प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह, विधवा-विवाह निषेध, व्यभिचार को बढ़ावा देना, समुद्र यात्रा निषेध, जिससे कूप मंडूकता को स्वीकार करना तथा दूसरों के साथ संसर्ग को रोकना आदि सामाजिक विकार हैं। जिनके रहते समाज का अभ्युत्थान संभव नहीं है। 'वैदिकी हिंसा-हिंसा न भवति' में उन्होंने द्यूत क्रीड़ा, मदिरापान, मांस भक्षण तथा नारी संसर्ग चार दुर्गुणों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है।[14]

सामाजिक परिवेश के चित्रण में कुछ कवियों की दृष्टि सुधारवादी थी तो कुछ यथास्थितिवादी भी थे। 'भारत-धर्म' कविता में अम्बिकादत्त व्यास ने वर्णाश्रम का अनुमोदन किया है तथा राधाचरण गोस्वामी ने अपनी अनेक कविताओं में प्राचीन शास्त्र नीतियों का समर्थन तथा विधवा-विवाह का विरोध किया है। किन्तु सामान्य स्थिति यह थी कि बहु-संख्यक कवियों ने सुधारवादी दृष्टिकोण को ही अपनाया। समाज-सुधार की भावना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष नारी जागरण का है। जिस पर स्वतंत्र रूप से विचार किया जा रहा है।

नारी जागरण :

भारतेन्दु युगीन कवियों ने नारी की दयनीय स्थिति को विशेष रूप से

देखा और चित्रित किया है। इतना ही नहीं वरन् उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से नारी-समाज में नव-जागरण का शंखनाद भी किया। इस नव जागरण के मुख्य सूत्र उसके प्रति सम्मानपूर्ण, नारी-शिक्षा तथा आत्म गौरव की प्रतिष्ठा आदि हैं। शिक्षा के माध्यम से उनमें स्वावलम्बन की प्रवृत्ति आ सकती थी और वे अपनी मान-मर्यादा की रक्षा में सफल भी हो सकती थी। अतीत की ओर झांकते हुए उन्होंने नारियों की गौरवमयी परंपरा का स्मरण किया है और यह दिखाया है कि नारी समाज की विशिष्ट विभूति है। वह अपनी समृद्ध परंपरा पर गर्व का अनुभव कर सकती है। गार्गी मैत्रेयी, अरुन्धती, अनसूया, गान्धारी आदि नारी की महिमान्वित गरिमा की साक्षी हैं। पद्मिनी और संयोगिता जैसी रूप और मान की धनी, दुर्गावती तथा नीलदेवी जैसी वीरांगनाएँ पन्ना जैसी स्वामिभक्त धाय, नारी के गौरव को रेखांकित करने में अपना विशिष्ट महत्त्व रखती हैं। प्रेमघन ने भी इसी समृद्ध परंपरा को दिखाते हुए नारियों में उपरिनिर्दिष्ट जागृति उत्पन्न करने की चेष्टा की है।[15] समाज की हीन मनोवृत्ति के प्रति तीखा प्रहार करते हुए उन्होंने व्यंग्य का भी सहारा लिया है।

> यहि असार संसार में चार वस्तु हैं सार।
> जूआ, मदिरा मांस अरु नारी संग विहार ।।[16]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु कालीन साहित्यकारों की चेतना सामान्यतः सामाजिक और मानववादी थी। समाज की दुर्दशा में सुधार लाना और देश को विदेशी शासन से मुक्त करना ये ही उनके दो महान लक्ष्य थे। 19वीं शताब्दी में भारतीय नवोत्थान की जो लहर उठी उसका लक्ष्य समाज और धर्म

के काले चिट्ठे खोलकर रखना और उनकी विकृत एवं गलित परंपराओं को मिटाकर यूरोपीय विशिष्टताओं के साथ भारतीय आदर्शों का समन्वय करना था, जिसे हम पूर्ववर्ती अध्याय में निर्दिष्ट कर चुके हैं । अत: दोनों के तुलनात्मक विश्लेषण के आधार पर हम कह सकते हैं कि इस दिशा में इन कवियों का योगदान एक सीमा तक महत्त्वपूर्ण है । इनकी सुधारवादी दृष्टि समकालीन आर्य समाज, ब्रह्म समाज तथा स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रवर्तित रामकृष्ण मिशन के प्रयासों से प्रभावित कही जा सकती है ।

राष्ट्रीय चेतना :

भारतेन्दु युग से पूर्व कविता के मुख्य केन्द्र राज दरबार और जन-साधारण के साथ उसका सम्बंध अत्यल्प था । पूर्ववर्ती अध्याय में विवेचित नव-जागरण ने हिंदी कविता को जन-साधारण से जोड़ दिया और जैसा कि समाज सुधारवादी कविताओं के उक्त विवेचन से भी प्रकट है कि उनकी कविता के विषय राज-दरबारों के हास-विलास न होकर सामाजिक समस्याओं से अनुप्राणित हुए । इस नव-जागरण के कारण राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में धीरे-धीरे परिवर्तन हुआ । भारतेन्दु तथा उनके समकालीन लेखकों तथा कवियों ने इस नव-जागरण के प्रभाव के फलस्वरूप देशभक्ति की भावना को अत्यन्त व्यापक फलक पर प्रस्तुत करने का प्रयास किया । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आरंभ में राजभक्ति से प्रभावित थे । 'विषस्य विषमौषधम्' में उन्होंने राजभक्ति के साथ राष्ट्रीयता का भी हल्का-सा रंग है । 'प्रबोधिनी' में उन्होंने राष्ट्रीयता के स्वर को प्रमुखता दी है । वस्तु-स्थिति तो यह है कि सन् 1880 के बाद भारतेन्दु साहित्य में राष्ट्रीयता की धारा प्रबल वेग से प्रवाहित हुई है । 'भारत दुर्दशा' नाटक से उनकी राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति का आरंभ माना जा सकता है । इस राष्ट्रीय चेतना के चार प्रधान पक्ष हैं- भारत-भूमि

के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान की भावना, ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध, आर्थिक शोषण तथा अतीत के प्रति गौरव भावना, जिन पर क्रमश: विचार किया जा रहा है।

1-भारत भूमि के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान की भावना :

इस काल के कवियों ने अपने देश के प्रति श्रद्धा व सम्मान की भावना प्रचुर मात्रा में अपने काव्य का आधार बनायी है। भारतेन्दु की देश भक्ति पर अपने विचार म व्यक्त करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि - 'कविता की नवीन धारा के बीच भारतेन्दु की वाणी का सबसे ऊँचा स्वर देश भक्ति का था। नीलदेवी, भारत दुर्दशा आदि नाटकों के भीतर आयी हुई कविताओं में देश दशा की जो मार्मिक व्यंजना है, वह तो है ही। बहुत सी स्वतंत्र कविताओं में कहीं वर्तमान अधोगति पर क्षोभ भरी वेदना, कहीं भविष्य की भावना से जगी हुई चिन्ता इत्यादि अनेक पुनीत भावनाओं का संचार पाया जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में, 'भारत दुर्दशा' में आलस्य आदि को लेकर इस कवि ने देश दशा को इस ढंग से झलकाया है कि नये और पुराने दोनों ढाँचों के लोगों का मन लो। इस कलाकार में यह बड़ा भारी गुण था कि इसने नये और पुराने विचारों को अपनी रचना में इस सफाई से मिलाया कि कहीं से जोड़ न मालूम हुआ। पुराने आदर्शों को लेकर इन्होंने नये आदर्श खड़े किये।[17] भारतेन्दु मण्डल के सुप्रसिद्ध कवि प्रतापनारायण मिश्र के निम्नलिखित पद में अतीत के गौरव-गान के साथ भारत भूमि के प्रति श्रद्धा एवं सम्मान की भावना व्यक्त हुई है -

जय-जय जगत शिरोमणि भारत।

निज गौरव हित जासु वदन-विधु सब संसार निहारत।

बुद्धि विद्या वीरता बड़ाई जासों रहहिं सदा रत ।
जासु दिव्य उपदेस पाय सब निज आचरण सुधारत ।। [18]

2- ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध :

विदेशी सत्ता के विरुद्ध जनता में विशेष भावना जागृत कराना ही इस युग के कवियों की राष्ट्रीय भावना का दूसरा महत्त्वपूर्ण पक्ष है । यह उन्होंने लक्षित किया था कि विदेशी साम्राज्य के कारण भारतीय जनता की दशा अत्यन्त दयनीय हो गयी है । यहां तक कि दो वक्त का खाना भी मयस्सर नहीं हो पा रहा है । जो देश धन-धान्य से संपन्न था । उसकी इस प्रकार की शोचनीय दशा का सारा दायित्व ब्रिटिश साम्राज्य पर है । उन्होंने अनेक रूपों में अपनी भावना को व्यक्त किया है तथा जन-जागृति लाने का प्रयास भी किया है । कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं -

1- सोई भारत भूमि सब भांति दुखारी ।
रह्यौं न एकहु वीर सहस्र कोस मंझारी ।।
होत सिंह को नाद जौन भारत वन माँही ।
तहं अब ससक सियार स्वान स्वर आदि लखाहीं ।
धन विद्या बल मान वीरता कीरति छाई ।
रही तहं तित केवल अब दीनता लखाई । [19]

2- पै दु:ख अति भारी इक यह जो बढ़त दीनता,
सुख सुकाल हूं जिनहिं अकालहि के सम भासत ।
कई कोटि जन सदा सहत भोजन की सांसत ।
एक ही समय आध ही पेट बहत जें भोजन ।
मोटो सूखो सूखो अन्न लौन बिन रोज न । [20]

इन उदाहरणों से ही नहीं, इस युग की अन्य कविताओं से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनके कवि ब्रिटिश शासन को भारत की दुर्दशा के लिए उत्तरदायी ठहराकर प्रकारान्तर से विदेशी शासन का या ब्रिटिश साम्राज्य का विरोध करते हैं। विदेशी शासन का उत्कट विरोध उनमें यथोचित मात्रा में मुखर नहीं हो पाया है। देश की तात्कालिक परिस्थितियों के प्रकाश में भी यह लक्षित होता है कि प्राय: सन् 1905 ई0 तक स्वतंत्रता संग्राम की जनवादी चेतना का उदय भी न हो पाया था।

3- आर्थिक शोषण :

इस युग के कवियों ने अंग्रेजों के आर्थिक शोषण का बहुत ही प्रभावशाली वर्णन किया है। भारतीय जनता की आय के तीन साधनों पर उन्होंने प्रकाश डाला है - वाणिज्य शिल्प और कृषि। अंग्रेजों ने वाणिज्य पर एकाधिकार कर लिया। यहां की वस्तुओं को अपने देश में ले जाकर और पक्के माल के रूप में यहां अधिक मूल्यों में बेचना उनकी आर्थिक नीति थी। भारत को ~~इन्होंने~~ उन्होंने कच्चे माल की सम्पूर्ति का माध्यम मात्र माना और पक्के माल की खपत का क्षेत्र। इस प्रकार उन्होंने यहां के वाणिज्य को पंगु बना दिया तथा शिल्प के विकास को अवरुद्ध कर दिया। कृषि की अपेक्षा और कृषि के उत्पादन पर भारी कर भार के परिणामस्वरूप कृषि भी पूर्णतया पंगु हो गयी। ~~0000~~ आय के समस्त ~~सब~~ साधनों का इस प्रकार ह्रास हो जाने का परिणाम यह हुआ कि सामान्य भारतीय जनता की कमर ही टूट गयी। फलत: जन जीवन दु:ख दैन्य का जीता जागता चित्र बन गया। भारतेन्दु जी इसे लक्ष्य करते हुए कहते हैं -

कछु तो वेतन में गयो, कछुक राजकर माँहि,
बाकी सब त्यौहार में गयो रह्यौ कछु नाँहि।
निरधन दिन दिन होता है भारत भुव सब भाँति।
ताहि बचाइ न कोउ सकत निज भुज बुधि बल काँति। [21]

भारतेन्दु जी ने अँग्रेजों की इस शोषण नीति के विरुद्ध आवाज उठायी है। साथ ही सामान्य जनता की दीन-हीन दशा का मर्मस्पर्शी वर्णन भी किया है -

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन विदेस चलि जात इहै अति ख्वारी ।
ताहू पै महँगी काल रोग विस्तारी ।
दिन दिन दून दुख ईस देत हा हारी ।
सब के ऊपर टिक्कस की आफत आई ।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।। [22]

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने देश की संपत्ति की हीनता, शोषण तथा जन-साधारण के दुर्दान्त अभाव के प्रति गहरी संवेदना व्यक्त की है। [23] इस भावना का एक रचनात्मक पक्ष भी है। भारतेन्दु जी ने 'भारत-दुर्दशा' में हीन दशा के लिए ऐक्य का अभाव दृष्टिगत कराया है तथा प्रबोधिनी के छन्द क्रमांक 25 में यह भावना व्यक्त है कि संसार के सभी देशों की कला-कुशलता भारत में आ जाय, कराधान औचित्यपूर्ण हो और शासक प्रजा के हितों की वृद्धि करें तथा साथ ही भारतीय अर्थ-शास्त्र की मुख्याधार कृषि अनुकूल वर्षा आदि से समृद्ध हो।

4- अतीत के प्रति गौरव भावना :

भारतेन्दु युगीन कवियों ने अतीत के प्रति गौरव भावना के प्रदर्शन के लिए कुछ अच्छी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, जिन पर विस्तार से सांस्कृतिक पुनरुत्थान वाले शीर्षक के अन्तर्गत विचार किया जा रहा है।

3- सांस्कृतिक पुनरुत्थान :

इस काल के कवियों पर नवजागरण का प्रभाव बहुत मात्रा में पड़ा है।

इस नवजागरण ने सुधारवादी जीवन दृष्टि के साथ-साथ प्राचीन परंपरा को नयी व्याख्या के साथ अतीत के प्रति गौरव भावना जगाकर उसे प्रेरक शक्ति के रूप में प्रयुक्त किया । इसी कारण इस नवजागरण को सांस्कृतिक पुनरुत्थान की संज्ञा दी जाती है । हिन्दी कविता में यह पुनरुत्थान अतीत के प्रति गौरव गान, इतिहास सांस्कृतिक अवबोध तथा स्वभाषा प्रेम के माध्यमों से व्यक्त हुआ है, जैसा कि निम्नलिखित विवेचन से प्रमाणित है ।

1- अतीत के प्रति गौरव गान :

इस काल के कवियों ने अतीत का गौरव गान करके अपनी वर्तमान पीढ़ी को एक प्रकार से प्रेरित करने का प्रयास किया है । राजनीतिक पराधीनता तथा इसी बीच लार्ड रिपन द्वारा प्रवर्तित विचार स्वतंत्रता के प्रकाशन की रोक के अधिनियम के कारण वे शासन का विरोध न कर सकते थे । इसीलिए उन्होंने एक ओर प्रकारान्तर से दीन-हीन दशा को सुधारने का आह्वान किया है । अतीत पर गौरवान्वित होने के साथ-साथ वर्तमान दुर्दशा पर शोक प्रकट करना भी भारतेन्दु की राष्ट्रीयता का अंग है । जब भी वे अतीत पर गर्व प्रकट करते हैं, उनकी दृष्टि वर्तमान दुर्दशा पर भी अवश्य पड़ जाती है और उनका हृदय व्यथित हो उठता है।[24] 'भारत दुर्दशा' और 'नील देवी' नाटकों में तज्जन्य सघन की निराशा के वातावरण का मार्मिक अंकन हुआ है ।

1- सब भांति दैव प्रतिकूल होइ एहि नासा ।
अब तजहुं वीर पर भारत को सब आसा ।।[25]
2- रोअहु सब मिली कै आवहु भारत भाई ।
हा ! हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।।[26]

राधाकृष्ण दास भी अतीत का गौरव गान करते हुए महापुरुषों के जीवन से प्रेरणा लेकर देश का उत्थान करना चाहते थे -

कहाँ परीक्षित कहं जनमेजय कहं विक्रम कहं भोज ।
नंद वंश कहं चन्द्रगुप्त कहं हाय कहाँ वह ओज ।।
हा कबहुं वह दिन फिर ह्वैं हैं, वह समृद्धि वह शोभा ।
कै अब तरसि-तरसि मरूसि कै दिन जैहैं सब छोभा ।।[27]

इसी प्रकार प्रेमघन अपनी प्राचीन संस्कृति पर गर्व अनुभव करते हुए वर्तमान दशा पर द्रवीभूत हो उठते हैं तथा उसे सुधारने के लिए अतीत से ही प्रेरणा ग्रहण करते हैं -

भारत भयो भले भारत यह आरत रोय रहो चिल्लाय,
~~भारत-भयो-भले-भारत-बल~~
बल को परम पराक्रम खोयो विद्या गरब न साय ।
मन मलीन धन हीन ह्वै पर्यो विवस विलखाय ।
नहिं मनु, व्यास, कणाद, पतंजलि गए शास्त्र छै जे गाय ।
गौतम शंकर हूं नाहीं जे सोचैं कछू उपाय ।[28]

इसी प्रकार 'नील देवी नाटक' में नायिका नीलदेवी के आह्वान में भी शौर्यपूर्ण परंपरा से प्रेरणा जगायी गयी है । अत: निष्कर्षत: संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि द्वितीय अध्याय में विस्तार से विवेचित सांस्कृतिक पुनरुत्थान की चेतना इन रचनाओं में दृष्टिगत की जा सकती है ।

इतिहास का अवबोध :

अतीत के गौरव की स्मृति दिलाने में इस युग के कवियों ने इतिहास को युगगत चेतना से जोड़ने का प्रयास किया है और साथ ही ऐसा अवबोध प्रस्तुत किया है जो विचार के क्षेत्र में उपर्युक्त सांस्कृतिक पुनर्जागरण को गतिशील बना सके । हमारे

देश की सांस्कृतिक अस्मिता सर्वविदित है। इसकी अक्षुण्ण धारा को प्रवाहमान करने में अनेक मनीषियों का योगदान है। जो इतिहास से सम्बद्ध हैं। भारतेन्दु जी की 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' की यह कविता समकालीन परतंत्रता की वेदना को ऐतिहासिक स्वतंत्रता आन्दोलन से संलग्न करके इस प्रकार प्रस्तुत करती है -

हाय पंचनद, हा पानीपत।
अजहु रहे तुम धरनि विराजत।
हाय चितौर निलज तू भारी।
अजहुं खरो भारतहि मंझारी।
जा दिन तुव अधिकार नसायो।
ताहि दिन किन धरनि समायो।[29]

इस काल के कवियों ने अपने स्वर्णिम अतीत को बार-बार दुहराया और उसके गौरवगान के साथ वर्तमान हीनावस्था के प्रति असन्तोष प्रकट करके नवजागरण का सन्देश देना ही श्रेयस्कर माना है, जो कि इसके पूर्ववर्ती विवेचन से भी प्रकट है।

स्वभाषा प्रेम :

भाषा किसी भी राष्ट्र की या उसके जातीय जीवन की सांस्कृतिक निधि है। अतः स्वभाषा के प्रति अनुराग राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना का महत्त्वपूर्ण पक्ष बन जाता है। भारतेन्दुयुगीन कवियों ने अपने उत्कट भाषा प्रेम का अच्छा परिचय दिया है। प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र, बाल मुकुन्द गुप्त आदि ने भी अपनी कविताओं में स्वभाषा प्रेम व्यक्त किया है। भारतेन्दु को हिन्दी की दुर्दशा पर

अ

अत्यन्त क्षोभ था । उन्होंने अपने क्षोभ को 'ग्रीष्म पै प्यारे हिम्मत बनाइये' नामक समस्या की पूर्ति में इस प्रकार अभिव्यक्त किया है -

भोज भरे अरु विक्रमहू, जिनको अब रोइ कै काव्य सुनाइए,
भाषा भई उरदू जग की, अब तो इन ग्रन्थन नीर डुबाइए,
राजा भये सब स्वारथ पीन, अमीरहू हीन, किन्हैं दरसाइए ।
नाहक देनी समस्या अबै यह, 'ग्रीष्म पै प्यारे हिम्मत बनाइए ।।[30]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अनन्य हिन्दी प्रेम उनके 'हिंदी पर उन्नति के व्याख्यान' से प्रकट होता है, जिसका सारगर्भित अंश यह है -

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल ।।[31]

प्रेमघन ने 18 अप्रैल 1900 को हिन्दी के कचहरी प्रवेश पर आनन्द बधाई' नामक कविता लिखी थी । जिससे उनके हिन्दी के प्रति अनन्य प्रेम की हीअभिव्यक्ति होती है । इसी प्रकार प्रतापनारायण मिश्र ने 'हिन्दी, हिन्दू- हिन्दुस्तान'[32] का नारा देकर हिन्दी को प्राथमिकता दी । देवनागरी और हिन्दी को एक मानते हुए उन्होंने कहा है -

देवनागरिहि गरे लाहो पैहो मोद महान ।
रहो निशंक प्रेम मदमाते श्री परताप समान ।।[33]

राधाचरण गोस्वामी ने भी अपने उत्कट हिन्दी प्रेम का परिचय देते हुए समाज के विविध वर्गों में उसके प्रति सम्मान एवं अनुराग को जगाया है ।[34]

कहना न होगा कि हिन्दी के प्रचार और उसके महत्त्व की स्थापना का जो

कहना न होगा कि हिन्दी के प्रचार और उसके महत्त्व की स्थापना का जो आन्दोलन राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने आगे चलकर स्वराज्य प्राप्ति के राष्ट्रीय प्रयासों के साथ-साथ आरम्भ किया था । उसकी वैचारिक पृष्ठभूमि का निर्माण भारतेन्दु तथा अ उनके सहयोगी कवियों ने बहुत पहले कर दिया था । अत: यह नि:संदिग्ध रूप से कहा जा सकता है कि इन कवियों का अपनी भाषा के प्रति एवं स्वस्थ संतुलित एवं दूरदर्शी दृष्टिकोण था तथा उनकी सांस्कृतिक भावना अत्यन्त उदात्त थी । भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी कवियों ने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से देश में राष्ट्रीयता जगाने का सफल प्रयास किया है । उससे हिन्दी गद्य तथा हिन्दी के प्रति प्रेम का भी समुचित विकास हुआ है । 1895 ई0 में नागरी प्रचारिणी पत्रिका आरम्भ हुई । 1900 ई0 में सरस्वती पत्रिका प्रकाशित हुई जहाँ से द्विवेदी युग का आरम्भ हो जाता है । इन सभी कवियों ने अपने पत्र व पत्रिकाओं का प्रकाशन देश और भाषा के उत्थान की दृष्टि से किया था न कि व्यावसायिक दृष्टि से । हिन्दी समाज में राजनीतिक संस्कार और चेतना को जगाने का दायित्व इन पत्रों पर था । तत्कालीन इतिहास को श्रृंखलित करने वाले अनेक तथ्य इन पत्रों में भरे पड़े हैं । यह पत्र युगीन साहित्यिक चेतना के प्रति सचेत थे । हिन्दी आंदोलन का सजीव आकलन और पक्ष समर्थन इनकी प्रमुख विशेषता है । वास्तव में हिन्दी पत्रकारिता के इसी युग में समग्र भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की अनुकूल भूमि तैयार की गयी ।[35]

मूल्यांकन :

निष्कर्ष रूप में यह कह सकते हैं कि भारतेन्दु युगीन कविता, नाटक, निबंध, उपन्यास तथा पत्र-पत्रिकाओं पर राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आन्दोलनों की गहरी छाप है । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र,प्रतापनारायण मिश्र, बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', बाल मुकुन्द गुप्त, राधा कृष्ण दास, राधाचरण

गोस्वामी आदि सभी लेखकों ने समसामयिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर अपने साहित्य द्वारा जन-जागरण का मंत्र फूंका । इस प्रकार हम देख सकते हैं कि भारतेन्दु-युगीन हिन्दी कविता में सांस्कृतिक चेतना मुखर है और उसकी बहुत ही सशक्त अभिव्यक्ति हुई है । भारतेन्दु युग की आधुनिकता का अपना विशेष सन्दर्भ है । यह आधुनिकता सम-सामयिक आधुनिकता से भिन्न एक विशिष्ट प्रकार के संक्रमण कालीन पुनरुत्थान से सम्बद्ध है । जिसके साथ परम्पराबद्धता, नवीनता के प्रति आग्रह, सांस्कृतिक बोध एवं आत्म-निष्ठा, नवीन जीवन पद्धति आदि के मूल्य अवतरित हुए । पराधीन भारतीयों ने पहली बार एक ऐसी पीड़ा का अनुभव किया, जो किसी प्रकार के निषेधात्मक मूल्यों से सम्बद्ध न होकर पूर्णतः भावात्मक थी । इसके कारण आधुनिकता से सम्बद्ध जो प्रवृत्तियाँ प्रकाश में आयीं । वे इस प्रकार हैं - देश प्रेम या देश की अविच्छिन्न एकता का मूल्य । शासक मनोवृत्ति के स्थान पर व्यापक स्तर पर एक साथ शासित होने का भाव (हीनता, नैराश्य, सामान्य कुंठा) आध्यात्मिक मूल्यों की रूढ़िबद्धता का त्याग और व्यापक आध्यात्मिक सांस्कृतिक स्तर पर एकता की भावना (व्यापक स्तर पर मुसलमान हिन्दू, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के स्थान पर भारतीय होने का बोध) एक निश्चित प्रकार के अर्थतंत्र से प्रभावित होने पर आवश्यकता पूर्ति के स्तर पर समान अस्तित्व का बोध कराने वाले चार नये मूल्य भारतेन्दु युग में पाश्चात्य प्रभाव से आये थे । राष्ट्रीयता, व्यक्तिगत स्तर पर राष्ट्रीयता के बोध, समान शासित मनोवृत्ति तथा सम-अस्तित्व के इन चारों मूल्यों ने नयी दिशाएं खोल दी थीं ।

भाषा संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण अंग मानी जाती है। उसके शब्दों का निर्माण तथा अभिव्यंजना के अनेकविध रूप जन-जीवन के अंतरंग से इतने जुड़े रहते हैं कि उनके कारण साहित्य और संस्कृति की गंगा-यमुनी धारा म अप्रतिहत रूप में प्रवहमान रहती है । यही कारण है कि किसी देश की स्वभाषा उसकी राष्ट्रीय

चेतना का एक महत्त्वपूर्ण अंग बन जाती है। अतः स्वदेश, निजी सांस्कृतिक अस्मिता तथा जनजीवन को अनुप्राणित करती हुई इस युग की कविता या साहित्य सही अर्थों में आधुनिक हिन्दी कविता या साहित्य की सांस्कृतिक चेतना को ही नहीं रूपायित करता, अपितु समस्त भारत की आशा-आकांक्षा का प्रतिनिधित्व करके युगीन नवजागरण का एक अभिन्न अंग बन जाता है।

भारतेन्दु युग की उपर्युक्त समग्र पुनरुत्थान वादी चेतना का समुचित विकास द्विवेदी युग में हुआ है। जिसे कि परवर्ती पृष्ठों के विवेचन में दृष्टिगत किया जा सकता है।

सांस्कृतिक चेतना का द्वितीय पदन्यास- द्विवेदी युग - सांस्कृतिक पुनरुत्थान का विकास काल :

बीसवीं शताब्दी वस्तुतः क्रांति, नवोत्थान और आधुनिकता के उत्तरोत्तर विकास की कहानी है। यद्यपि राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टियों से इस शताब्दी का पहला दशक उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का ही पूरक कहा जा सकता है, तथापि बीसवीं शती के दोनों दशकों का अपना निजी वैशिष्ट्य है। इस काल की समग्र साहित्य चेतना के केन्द्र बिन्दु में आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी रहे हैं। अतः उनके नाम पर प्रायः इतिहासकारों द्वारा प्रदत्त इस युग का नाम द्विवेदी युग नाम उचित ही है। इस सन्दर्भ में आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी का यह कथन नितान्त युक्तिसंगत है- पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिन्दी के युग प्रवर्तक लेखक और आचार्य के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिनके मस्तिष्क की भगीरथ शक्ति संसार में नवीन धारा प्रवाहित करती है।[36]

राजनीतिक पराधीनता के कारण सामान्य जन-समूह दमनचक्र से पीड़ित

था ही, किन्तु आर्थिक स्तर पर भी जीवन अस्त-व्यस्त था। ब्रिटिश सरकार की नीति भारत के लिए आर्थिक शोषण की थी। जिसे पहले भारतेन्दु जी ने भी - निर्दिष्ट किया था, यहाँ से कच्चा माल बाहर जाता था और ब्रिटेन में बने माल की खपत यहाँ होती थी, और इस खपत के लिए शासकों ने यहाँ के विश्व-विश्रुत वस्त्र उद्योग के विनाश में कोई कसर नहीं उठा रखी थी। फलत: देश की आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती ही गयी, उद्योग धन्धों के विकास की ओर सरकार ने कोई ध्यान नहीं किया। एक पर एक पड़ने वालों दुर्भिक्षों ने और भी दयनीय दशा कर दी। इस विकट स्थिति के मूल में परतंत्रता है। इसका बोध लोगों को हुआ। फलत: जनता में असाधारण जागृति हुई। स्वतंत्रता का मूल्य भी लोगों की समझ में आया। गोपाल कृष्ण गोखले और बाल गंगाधर तिलक के नेतृत्व ने जनता में नवजागरण के प्राण फूँके। पूर्ण स्वराज्य या राजनीतिक स्वतंत्रता को साथ स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात इस युग की एक महत्वपूर्ण घटना है। भारतेन्दु-कालीन साहित्यकारों ने भारत की दीन-हीन दशा पर अपना दु:ख प्रकट किया था। पर द्विवेदी युगीन साहित्यकारों ने एक ओर इस दीन दशा का चित्रण किया तो दूसरी ओर स्वतंत्रता की प्रेरणा भी देकर काव्याभिव्यक्ति को राष्ट्रीय आन्दोलन से जोड़ दिया।

ब्रिटिश शासन ने राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में ही नहीं, वरन् शैक्षणिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में भी अपनी विकट नीति से काम लिया। शिक्षा के क्षेत्र में उनका मूल उद्देश्य था एक ऐसे वर्ग को खड़ा करना जो शरीर से भारतीय होते हुए भी मन से अँग्रेजियत का गुलाम हो और उनके शासन कार्य में सहायक सिद्ध हो सके। एक सीमा तक उनको सफलता भी मिली। किन्तु अँग्रेजी शिक्षा के माध्यम से भारतवासी बर्क, मिल, स्पेन्सर रूसो आदि की रचनाओं के संपर्क में आये। जिससे राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता की भावना को विशेष बल मिला। उन्नीसवीं शताब्दी

के उत्तरार्द्ध में ही आर्य समाज, ब्रह्म-समाज, थियोसोफिकल सोसायटी और इंडियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना के फलस्वरूप भारतीय सभ्यता, संस्कृति, धर्म और समाज के पुनरुत्थान की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी थी, जो इस युग में और भी विकसित हो चली । बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, लाला लाजपतराय, स्वामी श्रद्धानन्द, मदनमोहन मालवीय आदि नेताओं ने देशवासियों के स्वाभिमान को जगाया तथा अपनी गौरवमयी परंपराओं एवं आदर्शों के प्रति निष्ठावान बनाने का सफल प्रयास किया । जिसे हम पूर्ववर्ती अध्याय में निर्दिष्ट कर चुके हैं ।

द्विवेदीयुगीन कविता का प्रधान स्वर राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना का है । आत्माभिमान तथा देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर इस काल के कवियों ने क्रांति एवं आत्मोत्सर्ग का संदेश दिया । राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर कवियों ने नवीन दृष्टिकोण अपनाकर धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक चेतना को युगीन परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्ति दी । शुद्धतावादी और सुधारवादी दृष्टि से प्रेरित हो आदर्श तथा नैतिकता का सम्बल ग्रहण किया और साथ ही उज्ज्वल अतीत को काव्य का विषय बनाकर सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय प्रेरणा का संचार कर दिया ।

उपर्युक्त तथ्य के साथ-साथ अतीत को युगानुरूप व्याख्या के साथ प्रस्तुत करना भी इस युग के कवियों की सांस्कृतिक चेतना का एक अभिन्न अंग कहा जा सकता है । धार्मिक आस्था के केन्द्र बिन्दु राम और कृष्ण ईश्वर के अवतार रूप में न प्रस्तुत होकर आदर्श मानव तथा सांस्कृतिक युगपुरुष के रूप में रेखांकित किये गये । अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपने 'प्रिय प्रवास' में कृष्ण को ईश्वर का अवतार मानते हुए भी उन्हें आदर्श मानव के रूप में चित्रित किया है । गोवर्द्धन धारण की अलौकिक लीला को उपाध्याय जी ने कृष्ण के बुद्धि संगत मानवीय कार्य के रूप में ही प्रस्तुत किया है -

भ्रमण करते ही सबने उन्हें,
सकल काल लखा सप्रसन्नता ।
रजनि भी उनकी कटती रही,
साविधि रक्षण में व्रजलोक के ।
लख अपार प्रसार गिरीन्द्र ने,
व्रज धराधिप के प्रिय पुत्र का ।
सकल लोग लगे कहने उसे,
रख लिया उंगली पर श्याम ने ।[37]

उनकी राधा विरह-विधुरा प्रोषित पतिका न होकर दीन-दुखियों की सेवा करने वाली व्यक्तित्व से समन्वित हुई हैं । उपाध्याय जी ने 'प्रिय प्रवास' की भूमिका में भी लिखा है - ' मैंने श्री कृष्ण चन्द्र को इस ग्रन्थ में एक महापुरुष की भांति अंकित किया है, ब्रह्म करके नहीं ' ।[38]

मैथिलीशरण गुप्त स्वयं भावापन्न कवि रहे हैं । राम में उनकी साम्प्रदायिक निष्ठा होने के बावजूद भी युग के आह्वान एवं युग की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने राम को सांस्कृतिक युगपुरुष के रूप में ही अंकित किया है । जिसे निम्नलिखित पंक्तियों में लक्ष्य किया जा सकता है -

मैं आर्यों का आदर्श बनाने आया ।
जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया ।
सुख-शान्ति हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया ।
विश्वासी का विश्वास बचाने आया ।
भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया ।

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया,
सन्देश यहाँ नहीं मैं स्वर्ग का लाया ।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया ।[39]

द्विवेदीयुगीन कवियों ने राम और कृष्ण को महापुरुष के रूप में इसलिए भी अंकित किया कि जन-साधारण उन्हें अपने ही निकट पाकर उनसे प्रेरणा ग्रहण कर सके और फलस्वरूप उक्त सांस्कृतिक पुनर्जागरण अधिक वर्चस्वी बन सके । आधुनिक युग की बौद्धिकता के लिए भी यह दृष्टिकोण उपयुक्त था । इस काल के कवियों को साहित्य जगत को ऐसी वस्तु देनी थी जो अवतार व अनावतारवादी दोनों के लिए समान रूप से ग्राह्य हो । इस काल के कवियों की दृष्टि केवल इसी में सीमित न रहकर विश्व कल्याण तथा लोक सेवा को भी ईश्वर का आदेश और उसकी प्रतिष्ठा का साधन समझने की ओर बढ़ी । इस रूप के प्रतिष्ठापक कवियों ने इस बात का अनुभव किया कि भगवान का दर्शन विलास और वैभव की आनन्दभूमि में रहकर नहीं किया जा सकता । वह तो दीन-दुःखियों के निवारण से ही मिलता है -

मैं ढूँढता तुझे था जब कुंज और वन में ।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में ।
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था ।
मैं था तुझे बुलाता संगीत में भजन में ।
मेरे लिए खड़ा था दुःखियों के द्वार पर तू ।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में ।[40]

उपर्युक्त मानवतावादी दृष्टि प्रसाद जी की इन पंक्तियों में भी प्रतिबिम्बित है -

जिस मंदिर का द्वार सदा उन्मुक्त रहा है ।
जिस मंदिर में रंक नरेश समान रहा है ।
जिसका है आराम प्रकृति कानन क ही सारा ।
जिस मंदिर के दीप इंदु, दिनकर औ तारा ।
उस मंदिर के नाथ को निरुपम निर्मम स्वस्थ को ।
नमस्कार सदा पूरे विश्व गृहस्थ को । [41]

उपर्युक्त तथ्यों के साथ यह दृष्टिगत कर लेना उचित होगा कि सांस्कृतिक पुनरुत्थान की व्यापक चेतना मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती के माध्यम से अभिव्यक्त हुई । सारे देश में एतद्विषयक भावना के व्यापक विस्तार की कवि की अभिलाषा पूरी हुई । [42] क्योंकि राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने वाले अनेक देश भक्त उनकी कविताओं का सोत्साह गान करते थे । भूत और वर्तमान के सम्यक विचार के आधार पर भविष्य के संधान की कवि की अपेक्षा भी सांस्कृतिक परम्परा के प्रति कवि की आद्य श्रद्धा की द्योतिका है । वस्तुत: यह स्वदेश की ममता से पूर्ण होने के कारण उस युग में विशेष रूप से समादृत हुई थी । इसमें हिन्दुत्व की भावना विद्वेषजनित न होकर युगीन आवश्यकता के अनुरूप ही उसमें पुनरुत्थान की प्रवृत्ति है । अतीत के गौरव की अनुभूति के साथ ही यह उद्दाम कामना है कि भारत वर्ष में उसकी अपनी भारती संस्कृति गूंज उठे । वस्तुत: द्विवेदीयुगीन धार्मिक भावना सांस्कृतिक उत्कर्ष की कामना से जुड़ी हुई है, जिसकी आरंभिक झलक पूर्ववर्ती भारतेन्दु युग में दृष्टिगत होती है, अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि इस युग में भारतेन्दुयुगीन सांस्कृतिक चेतना का परिष्कार एवं विस्तार दिखायी पड़ता है ।

सामाजिक भावना :

इस युग के कवियों की सामाजिक भावना जिन पक्षों पर अभिव्यक्त हुई वे इस प्रकार हैं - समाज के पीड़ित वर्ग व अभाव ग्रस्त सामाजिक वर्ग के प्रति सहानुभूति, समाज-सुधार, नारी के प्रति संवेदना तथा अछूतोद्धार इत्यादि ।

दीन -हीन कृषक तथा अभावग्रस्त मजदूर के प्रति इस काल के कवियों ने बड़ा मार्मिक वर्णन किया है। मैथिलीशरण गुप्त `किसान` (१९१७), सियारामशरण गुप्त की 'अनाथ' तथा गयाप्रसाद शुक्ल सनेही की 'कृषक क्रन्दन' विशेष रूप से कृषक वर्ग के प्रति गहरी संवेदना की प्रभावशाली रचनाएँ हैं। गयाप्रसाद शुक्ल सनेही की `किसान और मजदूर` सम्बंधी यह रचना विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

खपाया किये जात मजदूर, पेट भरना उनका दूर।
उड़ाते माल अधिक भरपूर, मलाई लड्डू मोतीचूर।
सुधरने में है जाके देर, अभी है बहुत बड़ा अंधेर।
अन्नदाता हैं धीर किसान, सिपाही दिखलाते हैं शान।[४३]

द्विवेदीयुगीन कवियों में उपदेश की प्रवृत्ति भी मिलती है। यह प्रवृत्ति मूलत: ईसाई-पादरी और आर्य समाजी आदि धर्म प्रचारकों के प्रभाव के फलस्वरूप है। धर्म प्रचारकों ने अपने प्रचार के माध्यम से अच्छी सफलता प्राप्त की। हिन्दी के कवियों ने इसे देखा और उस माध्यम को अपनाया। मैथिलीशरण गुप्त `भारत-भारती` में ब्राह्मणों, शूद्रों, क्षत्रियों तथा वैश्यों को उनकी हीन दशा का परिचय कराते हुए उन्हें कर्तव्य पथ पर आरूढ़ होने का परामर्श दिया है।[४४] कवियों को भी उन्होंने समुचित कर्म का उपदेश दिया है -

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए,
उसमें उचित उपदेश का मर्म होना चाहिए।[४५]

इस युग के काव्य में हास्य और व्यंग्य की भी प्रधानता मिलती है। हास्य-व्यंग्य के आलम्बन एक और नयी सभ्यता संस्कृति तथा नये आचार-विचारों से प्रभावित शिक्षित बाबू लोग थे और दूसरी ओर आधुनिक शिक्षा के विरोधी, रूढ़िग्रस्त तथा कट्टरपंथी धार्मिक लोग, बालमुकुन्द गुप्त इस युग के बहुत ही सफल और सशक्त व्यंग्यकार हैं। एक बार लार्ड कर्जन द्वारा भारतीयों को झूठा कहने पर उन्होंने उसी को लक्ष्य

करके यह व्यंग्यात्मक प्रहार किया है -

बोले और करे कछु और, यही सभ्य सच्चे के तौर
मन में कुछ मुंह पै कुछ और, यही है सत्य कर लो गौर,
झूठ को जो सच कर दिखलावे, सो ही सच्चा साधु कहावे
मुंह जिसका हो सके न बन्द, समझो उसे सच्चिदानन्द ।[४६]

नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने विदेशी सभ्यता के रंग में रंगे जैंटिन मैनों और रूढ़िवादी पुराणपंथियों पर समान रूप से व्यंग्यात्मक प्रहार किया है -

ईश गिरिजा को छोड़, ईशु गिरिजा में जाय,
अब शंकर सलोने मैन मिस्टर कहावेंगे ।
बूट पतलून कोट कम्फटर टोपी डाट,
जाकेट की पाकेट में वाच लटकावेंगे ।

घूमेंगे घमण्डी बने रंडी का पकड़ हाथ,
पीवेंगे बरण्डी मीट होटल में खावेंगे ,
फारसी की छार सी उड़ाय अंगरेजी पढ़
मानो देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे ।[४७]

नारी के प्रति संवेदना भी इस काल के कवियों ने अपने काव्य का विषय बनाया । नारी को उच्च स्थान देकर उसके महत्त्व को प्रतिपादित किया । प्रिय-प्रवास की राधा यदि समाज सेविका के रूप में प्रस्तुत हुई है तो साकेत की उर्मिला में स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेनेवाली नारी की छाप है जो स्वयं सैन्य संगठन कर लंका प्रस्थान के लिए तत्पर है ।

ई   द्विवेदीयुगीन काव्य धारा में नारी भारतीय संस्कृति की मूर्ति है । उसमें त्याग,तपस्या, संयम व आत्मोत्सर्ग की भावनाएँ व्याप्त हैं । `यशोधरा` के ये शब्द तत्कालीन समाज की स्पष्ट छाप लिए हुए हैं जो कि नारी-जीवन की साधना के द्योतक हैं।

इस दिन के उपयुक्त पात्र की उन्हें खोज थी भारी,
आर्य पुत्र ले चुके परीक्षा अब है मेरी बारी ।[४८]

जहाँ एक ओर कवियों ने नारी के उच्च व उदात्त रूप का वर्णन किया है दूसरी ओर समाज की विभीषिकाओं से पीड़ित नारी की दयनीय अवस्था का भी वह चित्रण करना नहीं भूलता । नाथूराम शर्मा `शंकर` की 'गर्भरण्डा रहस्य' में विधवा के मार्मिक जीवन का सजीव चित्रण है । निराला भी विधवा के प्रति संवेदना को इस प्रकार कहते हैं -

वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी ।
वह दीपशिखा सी शांत भाव में लीन ।
वह क्रूर तांडव की स्मृति रेखा सी ।
वह टूटे तरु की छुट्टी लता सी दीन ।
दलित भारत की ही विधवा है ।[४६]

द्वितीय अध्याय में वर्णित सांस्कृतिक पुनर्जागरण का इस काल के काव्य पर यथोचित प्रभाव पड़ा है। उनके द्वारा समाज सुधार की जो लहर उठायी गयी थी, वह काव्य में भी स्थान पा चुकी थी । अनमेल-विवाह, बाल-विवाह, पर्दा-प्रथा तथा दहेज की कुरीतियाँ ये सभी काव्य में व्यंग्यात्मक रूप में प्रस्तुत हुई हैं ।

UNIVERSITY LIBRARY, M.S. UNIVERSITY OF BARODA

इस काल में मानवतावादी दृष्टिकोण के कारण समाज में उपेक्षित अस्पृश्यों के प्रति सहानुभूति जगी । अंग्रेजों ने पीड़ित, अपमानित-अस्पृश्यों को फुसलाने का तथा हिन्दुओं और अछूतों में फूट डालने का भरसक प्रयत्न कियाथा । किन्तु आर्य समाज जैसी सांस्कृतिक संस्था ने उन्हें अपनी संस्था में सम्मिलित कर समाज में उन्हें बराबरी का स्थान दिलाने का प्रयास किया । साकेत काव्य में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने राम को भील, किरातों के साथ आत्मीय सम्बन्ध जोड़ते दिखाया है । जो कि सांस्कृतिक आन्दोलन का प्रभाव कहा जा सकता है ।

वस्तुत: इस युग के कवियों का प्रधान उद्देश्य समाज सुधार था । वे यह चाहते थे कि समाज अपनी सभ्यता, संस्कृति और परिवेश के अनुकूल बदले । आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से लाभ उठाकर विश्व के उन्नतिशील देशों और जातियों के समक्ष महान बने ।

राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना :

द्विवेदीयुगीन कविता का मुख्य स्वर राष्ट्रीय व सांस्कृतिक चेतना का गौरवमय ओज लेकर प्रस्तुत हुआ है । ~~राष्ट्रीय भावना संस्कृति का आधार लेकर प्रस्तुत हुआ है ।~~ राष्ट्रीय भावना संस्कृति के का आधार लेकर प्रबल रूप से काव्य में अवतरित हुई जिसे हम पीछे भी लक्ष्य कर चुके हैं । कवियों ने उज्ज्वल अतीत को नये संदर्भों में प्रस्तुत करके राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना को जगाने का महत् प्रयास किया है । इस चेतना को निम्न-लिखित रूपों में विवेचित किया जा सकता है -

१- भारत भूमि की बन्दना(२) राष्ट्रीय सांस्कृतिक परम्परा के प्रति गौरव का अनुभव (३) स्वतंत्रता की चेतना और विदेशी शासन के प्रति असन्तोष(४) भाषा और साहित्य के प्रति अनुराग ।

१- भारत भूमि की वन्दना :

भारत प्रशस्ति के गीत तो वैसे प्राचीन काल से ही गाये जाते थे किन्तु द्विवेदीयुगीन कवियों ने अतीत को ध्यान में रखकर भारत भूमि की वन्दना अत्यन्त गौरवोज्ज्वल रूप में की है । मैथिलीशरण गुप्त[५०], सियारामशरण गुप्त[५१], श्रीधर पाठक[५२] आदि की भारत स्तुति आधुनिक हिन्दी कविता के लिए चिरस्मरणीय रहेगी । उर्दू के कवियों में इकबाल का `सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा` राष्ट्रीय गीत के लिए प्रसिद्ध है । मैथिलीशरण गुप्त जी तो भारत को सर्व गुणों की मूर्ति समझते हैं -

नीलाम्बर परिधान हरित तट पर सुन्दर है,
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है ।
नदियाँ प्रेम प्रवाह फूल तारे मण्डल हैं ।
वन्दीजन खग वृन्द शेष फन सिंहासन है ।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की ।
हे मातृभूमि ! तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की ।[५३]

इस महिमान्वित जन्मभूमि के प्रति प्रेम न रखने वाले को महावीरप्रसाद जी पाप का अधिकारी समझते हैं -

जग में जन्मभूमि सुखदायी,
जिस नर पशु के मन में न समायी,
उसके मुख दर्शक नर नारी,
होते हैं अघ के अधिकारी ।[५४]

अपने देश के प्रति प्रेम गयाप्रसाद शुक्ल की यह कविता सही अर्थों में कराती है -

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं, नर पशु निरा है और मृतक समान है।

इसी प्रकार सत्यनारायण कविरत्न की स्वदेश वन्दना का गीत अतीत गौरव से संबलित भारतभूमि की वन्दना का उत्तम उदाहरण है। इस काल के सभी कवियों के काव्य में मातृभूमि भारत भूमि की वन्दना अपनी अस्मिता को लेकर प्रस्फुटित हुई है। जिससे इस युग का काव्य हिन्दी साहित्य के लिए स्मरणीय है।

२-राष्ट्रीय-सांस्कृतिक परम्परा के प्रति गौरवानुभूति :

द्विवेदीयुगीन काव्य की मुख्य चेतना राष्ट्रीय सांस्कृतिक ही है। भारत का अतीत गौरवशाली व वैभव मंडित है और यहां की संस्कृति अति प्राचीन है। इस काल के कवियों ने अपनी प्राचीन अस्मिता को अपने काव्य का आधार बनाकर देशवासियों को तत्कालीन दयनीय स्थिति से परिचित कराया है। इस काल की राष्ट्रीय वीणा का सबसे ऊंचा सांस्कृतिक स्वर अतीत का गौरवगान ही है। गुप्त जी की 'भारत-भारती' ने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'तत्कालीन शिक्षित जनचित्त की आशा आकांक्षा को बुभुक्षित रहने से बचाया। उसने किसी बड़े आदर्श को तो प्रतिष्ठित नहीं किया, लेकिन जनचित्त को उसके प्राचीन गौरव की कहानी सुनाकर सजग और साकांक्ष बनाया'[५५] अतीत गौरव के स्मरण का कारण देश की दयनीय दशा की तुलना 'उस प्राचीन सर्वोच्च अवस्था से करते हैं और गहरी विषमता पाकर हमारे हृदय में विषाद की सृष्टि होती है। यह विषाद हमें निश्चेष्ट न बनाकर इस विषमता को दूर करने में प्रयत्नशील बना देता है।'[५६] अतीत गौरव के स्मरण का दूसरा कारण यह समझा जा सकता है कि 'अंग्रेज कूटनीतिज्ञ भारतीय राष्ट्रीयता का विनाश करके और जनता को आत्म विस्मृत करके उसे अपनी सभ्यता व संस्कृति के

रंग में रंगनाचाहते थे । वे भारतीय जनता में आत्म हीनता की भावना दृढ़ करके उसे दीर्घकाल के लिए दासत्व की श्रृंखला में जकड़े रखना चाहते थे ।[57] अतीत का वैभव दासता की श्रृंखलाओं को तोडने की प्रेरणा देता है । राष्ट्र के प्रति प्रेम राष्ट्रीय चेतना का मूल आधार है ।' राष्ट्रीय चेतना ने हमारा ध्यान प्राचीन गौरव गाथा की ओर आकर्षित किया । गौरवमय अतीत के सहारे ही गौरवमय भविष्य के निर्माण की आशा की जा सकती है ।'[58] इस युग के काव्य में सांस्कृतिक पुनरुत्थान और अतीत गौरवगाथा की जो प्रवृत्ति परिलक्षित होती है । उसके मूल में आर्य समाज, स्वामी विवेकानन्द, लोकमान्य तिलक जैसे भारतीयता के समर्थक राष्ट्रीय नेताओं का प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है । जिसे हम द्वितीय अध्याय में दृष्टिगत कर चुके हैं ।

भारत की प्राचीन संस्कृति के प्रति प्रेम हरिऔध और मैथिलीशरण दोनों ही कवियों के काव्य में विशेष रूप से मिलता है। सोहनलाल द्विवेदी ने भी 'विक्रमादित्य' के वैभव का वर्णन कर अतीत का उज्ज्वल स्मरण कराके भारतीयों को नवप्रभात का संदेश दिया है ।[59] आगे चलकर इसी प्रवृत्ति का ज्योतिर्मय पुंज दिनकर के काव्य में मिलता है । जिसकी चर्चा कवि की राष्ट्रीय चेतना वाले अध्याय के अंतर्गत विस्तृत रूप में की जाएगी ।

स्वतंत्रता की चेतना और विदेशी शासन के प्रति असंतोष :

इस युग के कवियों का मुख्य स्वर अतीत के गौरव गान के साथ वर्तमान स्वतंत्रता की चेतना को जगाना था । यूरोपीय सभ्यता के प्रभाव से जो मानसिक दासता उस समय जन-मानस में व्याप्त थी, उसकी प्रतिक्रिया के रूप में हिन्दी में अनेक कविताओं का प्रणयन हुआ, जो राष्ट्रीय व सांस्कृतिक चेतना का पक्ष उजागर करती है । नौकरशाही के विषम अत्याचार की यह कविता प्रशंसनीय कही जा सकती है।

नौकरशाही सभ्यता का गला काटती है,
गांधी के संघाती अंखियों में खटकत है ।
भारत को लूट कूटनीति की उजाड़ रही,
न्याय के भिखारी ठौर ठौर भटकत हैं ।
जेलों में स्वदेश भक्त हिंसाहीन सज्जनों को
पेट पाल पान की पिशाच पटकत हैं ।
कौन को पुकारे अब 'शंकर' बचालो हमें,
गोरे और गोरों के गुलाम अटकत हैं ।[६०]

गुप्त जी की भारत-भारतीने उन दिनों विदेशी शासन से मुक्ति पाने की अपूर्व प्रेरणा दी ।[६१] श्रीधर पाठक, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, हरिऔध आदि की कविताओं में यह चेतना विकसित रूप में मिलती है । इन कवियों ने काव्य द्वारा स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग तथा भारत के स्वातंत्र्य युद्ध के लिए तत्पर रहने की प्रेरणा दी। स्वतंत्रता की आकांक्षा एवं अनन्य देशभक्ति की सुरम्य अभिव्यक्ति रामनरेश त्रिपाठी की रचनाओं में हुई । पथिक, मिलन और स्वप्न तीनों काव्य उनकी देशभक्ति के उत्तम उदाहरण हैं । इन तीनों खण्ड काव्यों में व्यक्तिगत के-ह सुख और स्वार्थ को त्यागकर देश के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर देने की प्रेरणा की मंजुल अभिव्यक्ति हुई है ।

'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' लोकमान्य तिलक के इस आह्वान का हिन्दी काव्य पर भी बहुत प्रभाव पड़ा है । यद्यपि विदेशी शासन के प्रति असंतोष कविता के माध्यम से प्रस्तुत हुआ है, किन्तु उसे अतीत के साथ जोड़कर कवियों ने स्वतंत्रता की चेतना को जगाने का जो प्रयास किया है उसके दो कारण माने जा सकते हैं- एक तो स्वतंत्रता की चेतना को केवल केवल प्रतिक्रियात्मक न बनाकर उसे स्थायी और रचनात्मक नींव पर प्रतिष्ठित करना तथा दूसरे जैसा कि डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि कवि सीधे हार्डिंज, विलिंगटन आदि की भारत से निष्क्रान्ति की चर्चा करके कारावास का दण्ड नहीं भुगत सकता था। इसलिए उसने अपनी काव्य प्रतिभा से

सिल्यूकस, शक या हूण आदि को निष्क्रान्त करने का वर्णन पूर्ण ओज और स्पष्टता के साथ किया ।[62]

अत: निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि हिन्दी कविता में अभिव्यक्त स्वतंत्रता की चेतना तथा विदेशी शासन के प्रति असंतोष युगीन राष्ट्रीय आन्दोलन का परिणाम है जो युगगत सन्दर्भ को लेकर भी सांस्कृतिक पुनर्जागरण से भी प्रेरणा लेता रहा है ।

भाषा,राष्ट्रभाषा व साहित्य के प्रति अनुराग :

साहित्य का मानव जीवन से चिरंतन सम्बन्ध है ।साहित्य का स्रष्टा मनुष्य है और मनुष्य के लिए ही साहित्य की सृष्टि है ।[63] भाषा संस्कृति एवं समाज की वाहिका है और साहित्य का मूलाधार भी है । भाषा का जो रूप आज हम देखते हैं, उसकी नींव डालने में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने अथक परिश्रम के साथ मजबूत ईंट का कार्य किया है । किसी भी नयी प्रणाली का आरम्भ करने का अर्थ है संघर्ष । पुरानी भाषागत मान्यताओं के प्रति द्विवेदी जी ने संघर्ष कर खड़ी बोली को जिस प्रकार प्रतिष्ठित किया, वह आज परिष्कृत रूप में हमारे समक्ष है । इस कार्य के लिए उन्हें अपने युग के अनेक कवियों का भरपूर सहयोग मिला । उनके प्रदेय का सर्वाधिक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि उन्होंने हिन्दी-भाषी शीर्षस्थ विद्वानों को, जो अंग्रेजी में लिखने में गर्व का अनुभव करते थे, अपने प्रेरणादायक वैचारिक आन्दोलन द्वारा हिन्दी में लिखने की ओर प्रेरित किया ।`साहित्य की महत्ता` शीर्षक निबन्ध में प्रस्तुत उनका वक्तव्य इसका साक्ष्य उपस्थित करता है- `बात यह है कि अपनी भाषा का साहित्य ही जाति और स्वदेश की उन्नति का साधक है । विदेशी भाषा का चूडांत ज्ञान प्राप्त कर लेने और उसमें महत्त्वपूर्ण ग्रंथ रचना करने पर भी विशेष सफलता नहीं प्राप्त हो सकती और अपने देश को विशेष लाभ नहीं पहुंच सकता ।[64] द्विवेदी जी का उपरि निर्दिष्ट दृष्टिकोण को हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि में ही नहीं अपितु सांस्कृतिक-राष्ट्रीय चेतना के विकास में सहायक

कहा जा सकता है । इसका अपेक्षित परिणाम भी हुआ । उनके प्रयास से हिन्दी को कई श्रेष्ठ लेखक प्राप्त हुए । उनकी भाषा को परिश्रम और मनोयोग से सुधार कर लेखों को प्रकाशित करके उन्होंने लेखकों का एक अच्छा-खासा मण्डल सा खड़ा कर दिया । ऐसे लेखक जो अंग्रेजी के लेखन से हिन्दी के साहित्य सर्जन में जुड़े होंगे वे स्वभावतः भारतीय सांस्कृतिक धारा से भी स्वतः स्फूर्त होकर अनजाने ही उसे गतिशील बनाने में भी सहायक कहे जा सकते हैं ।

१९०३ ई० में महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कालिदास के `कुमार संभव` का अनुवाद प्रकाशित कराया । इसमें खड़ी बोली का इतना सुन्दर, सुष्ठु एवं व्याकरण-सम्मत रूप था कि वह आज भी पठनीय है ।[६५] भाषा में जिस तत्समता, लाक्षणिक, व्यंग्य प्रधान शैली और उच्चाशयता की प्रतिष्ठा द्विवेदी जी ने की उसने अगले कवियों को शब्द कोश दिया । प्रयोगों की परंपरा दी और अत्यन्त उदात्त मनोभूमि दी[६६] जिसका प्रतिफलन छायावादी काव्य है । मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, नाथूराम शर्मा शंकर आदि ने खड़ी बोली में केवल रचना ही नहीं की वरन् यह भी सिद्ध कर दिया कि खड़ी बोली काव्याभिव्यक्ति का माध्यम बनने में सक्षम है।[६७] सन् १९०० से १९२० तक का काल हिन्दी कविता में नवीन युग न ले आनेवाला काल है । इस समय काव्य की भाषा ब्रजभाषा से बदलकर खड़ी बोली हो गयी ।[६८] इस काल के कवियों ने आधुनिक साहित्य का मंथन शुरू किया । भाषा को बंधी सधी लीक से हटाया । उसमें नवीन भावों के प्रकाशन की क्षमता दी। और नवीन भावों का अस्पष्ट किन्तु निश्चित रूप पाठकों के सामने प्रस्तुत किया ।[६९]

अतः उपर्युक्त तथ्यों के प्रकाश में भाषा और साहित्य के क्षेत्र में द्विवेदी जी तथा उनके युग की सांस्कृतिक चेतना स्वयं सिद्ध है । इस युग ने भाषा प्रयोग की एक ऐसी सुदृढ़ आधार भूमि का निर्माण किया । जिस पर छायावादी युग की हिन्दी कविता का काव्य शिल्प एवं अभिव्यंजना के नये मार्मिक तथा समर्थ आयामों का भवन खड़ा हुआ है । जिस पर प्रसंगानुसार आगे विचार किया जायेगा ।

मूल्यांकन :

समग्रतया विचार करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि द्विवेदीयुग की कविता राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता है । मातृभूमि के लिए सर्वस्व बलिदान, स्वार्थ त्याग तथा सामाजिक एकता एवं मानवता की अमोघ प्रेरणा देकर इन कवियों ने विस्तृत राष्ट्रीय भावना को व्यंजित किया तथा तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों को सम्बल प्रदान किया । द्विवेदीयुगीन कवियों ने जातीय जीवन की बड़ी मार्मिक एवं रचनात्मक आलोचना की । उन्होंने उसके शुभ पक्ष को प्रोत्साहित और अशुभ पक्ष को तिरस्कृत किया । जहाँ उन्होंने सामाजिक कुरीतियों , धार्मिक आडम्बरों एवं निरर्थक रूढ़ियों पर प्रबल प्रहार किये, वहां अपनी परंपरा के उपयोगी तत्त्वों का सबल समर्थन और पोषण भी किया । वस्तुत: इस युग की सांस्कृतिक चेतना का प्रबल प्रभाव कविता पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । कविता के सांस्कृतिक पक्ष पर ही इसकी शक्ति निहित है ।

द्विवेदी युगीन काव्य सांस्कृतिक पुनरुत्थान, उदार राष्ट्रीयता, जागरण-सुधार और उच्च आदर्शों का काव्य है । उन्होंने अपनी राष्ट्रीय भावना को अतीत के गौरव-गान से मुखर किया । पर वर्तमान की स्थिति उनकी दृष्टि से कभी ओझल नहीं हुई । उन्होंने सांस्कृतिक अ प्रवृत्ति को अभिव्यक्ति दी तथा समाज सुधार का प्रबल समर्थन किया । उनका लक्ष्य देश को जाति व साम्प्रदायिकता से ऊपर उठाकर एक मानवीय दृष्टिकोण प्रदान करना था । किन्तु यह मानवतावाद राष्ट्रीय, सांस्कृतिक मान्यता पर आधृत है । वस्तुत: वे अपने विचार, आचार-व्यवहार के कारण विशुद्ध भारतीय थे । उनकी समस्त रचनाएँ अपूर्व सांस्कृतिक पुनरुत्थान की सुन्दर अभिव्यक्ति हैं । काव्य की विषय वस्तु यह सांस्कृतिक चेतना स्वयं आचार्य द्विवेदी द्वारा निर्मित भाषा और साहित्य सर्जन की समायोजना में

परिलक्षित हुई है । जिसे हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में निर्दिष्ट कर चुके हैं । इन सभी जीवन पदार्थों की कलात्मक अभिव्यक्ति छायावाद में दृष्टिगत होती है जो कि परवर्ती विवेचन का विषय है ।

छायावाद : हिन्दी कविता का उत्कर्ष काल :

छायावाद की प्रेरणा को प्रकाशित करते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि-`छायावाद की मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। इस युग में भारतीय परंपरागत आध्यात्मिक दर्शन की प्रतिष्ठा हुई है, परन्तु यह आध्यात्मिकता धार्मिक या साम्प्रदायिक न होकर मानवीय अथवा सांस्कृतिक है ।` यहां संक्षेप में यह उल्लेखनीय है कि छायावादी की सांस्कृतिक चेतना परम्परागत आध्यात्मिक दर्शन तक ही सीमित न रहकर एक व्यापक भावभूमि पर अधिष्ठित है । और साथ ही वह युगीन यथार्थ से भी जुड़ी है छायावाद के प्रवर्तक कवि जयशंकर प्रसाद ने उसकी यथार्थवादी भंगिमा का भलीभांति समर्थन किया है । अत: जिस सांस्कृतिक नवजागरण की चेतना पर हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में विचार कर चुके हैं, उसका समकालीन विकसित रूप हम छायावादी कवियों की पुष्कल रचनाओं में देख सकते हैं । `छायावाद` शब्द से `कविता` के नये शिल्प का बोध होता है, किन्तु उसकी सांस्कृतिक अन्तर्धारा-नयी न होकर सांस्कृतिक-राष्ट्रीय जन-जागरण या सांस्कृतिक उत्थान से अनुप्राणित है। धारा को बाहरी आकार देने वाले शिल्प के आयाम केवल कूल या तटवर्ती प्रदेश का कार्य करते हैं । जयशंकर प्रसाद के शब्दों में -`छायावाद भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर है । ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय, प्रतीक-विधान तथा उपचार वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएं हैं ।[७१] अत: छायावाद युग की कविताओं को केवल सूक्ष्म अभिव्यंजना प्रणाली की कविता मानना उसकी विषय वस्तु एवं अन्तर्वर्ती चेतना के साथ अन्याय होगा । इस सरस, सूक्ष्म अभिव्यंजनामयी लाक्षणिक काव्य शैली की क्रोड़ या आवरण

के बीच जो कविता कामिनी की सहज-उर्मिल भावना योजना प्रस्तुत हुई है । उसमें भारतीय संस्कृति की गौरवमयी चेतना स्थान-स्थान पर ध्वनित-प्रतिध्वनित होती रहती है । इस सन्दर्भ में सुमित्रानन्दन पंत का यह मत समीचीन कहा जा सकता है 'छायावादी कविता ने सोयी हुई भारतीय चेतना की गहराइयों में नवीन रागात्मकता की माधुर्य-ज्वाला, नवीन जीवन दृष्टि का सौन्दर्य बोध तथा नवीन विश्व मानवता के स्वप्नों का आलोक उंडेला । विश्व-बोध के व्यापक आयाम, लोक मानव की नवीन आकांक्षाएं, जीवन प्रेम से प्रेरित, परिष्कृत अहंता के मांसल सौन्दर्य का परिधान उसने पहले पहल हिन्दी कविता को प्रदान किया । यह सब छायावाद के लिए इसलिए संभव हो सका कि भारतीय पुनर्जागरण विश्व सभ्यता के इतिहास के एक और भी महान लोक जागरण का अंग बनकर आया था । विश्व सभ्यता के इतिहास का नहीं । वह मानव चेतना के भी एक महान सांस्कृतिक क्रान्ति के युग का समारम्भ बनकर उदय हुआ। इसलिए छायावाद में हमें राष्ट्रीय जागरण के मुखर गीतों के अतिरिक्त, मानवीय जागरण के गंभीर स्वप्न मौन संवेदन भरे स्वर तथा धरती के जन-जागरण के संघर्ष मुखर विद्रोह भरे स्वर भी एक साथ सुनने को मिलते हैं ।[७२]

अत: उपर्युक्त तथ्यों के निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि छायावादी कविता में सांस्कृतिक नवजागरण और राष्ट्रीय भावना आदि का जो स्वरूप पाया जाता है, वह अत्यन्त विशाल फलक पर अधिष्ठित है । इसके विविध पक्षों के सम्यक् न्याय-भावना के लिए इस युग की कतिपय प्रतिनिधि कृतियों को ध्यान में रखकर यहां विचार किया जाएगा ।

सांस्कृतिक चेतना के विविध रूपों के दृष्टिकोण से इस युग की रचनाएँ प्राय: दो प्रकार की हैं- एक तो सांस्कृतिक परंपरा की पोषक तथा दूसरी राष्ट्रीय चेतना से पूर्णतया अनुप्राणित । यद्यपि पूर्ववर्ती पृष्ठों के विवेचन से प्रकट है कि देश में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की चेतना ने अतीत के प्रति गौरव की भावना को जगाने का पूरा -पूरा प्रयास किया है । उसी का आगे चलकर विकसित रूप राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रयासों में

प्रयास किया है । उसी का आगे चलकर विकसित रूप राष्ट्रीय स्वतंत्रता के प्रयासों में दृष्टिगोचर होता है । क्योंकि जैसा कि डॉ० नगेन्द्र का मत है कि बिना राजनीतिक स्वतंत्रता की प्रतिष्ठा के सांस्कृतिक गौरव की प्रतिष्ठा का अभियान पूर्ण नहीं हो सकता था ।[७३] किन्तु जैसा कि पूर्ववर्ती अध्यायों के विवेचन से भी प्रकट है कि राष्ट्रीयता की सम्यक प्रतिष्ठा के लिए सांस्कृतिक गौरव का संचार उस युग में अत्यावश्यक था ।

अतीत के प्रति गौरव भावना से अनुप्राणित होकर लिखी गयी प्रबन्ध कृतियों का आधिक्य इस युग की एक उल्लेखनीय विशेषता है । हिन्दी साहित्य के वृहत् इतिहास में लगभग नौ महाकाव्यों ३१ पौराणिक, १६ ऐतिहासिक, १३देशभक्ति परक तथा ६ चरित्र मूलक खण्डकाव्यों का जो संक्षिप्त परिचय दिया है। उससे स्पष्ट है कि काव्य-चेतना किस प्रकार अतीत के गौरवमय पृष्ठों का उद्घाटन करके उसे आधुनिक चेतना से सम्बद्ध करती दिखायी पड़ती है । आधुनिक चेतना से इतिहास और पुराण की सामग्री को प्रस्तुत करना, यथास्थान उसे नयी व्याख्या देना आदि प्रवृत्तियां पूर्वनिर्दिष्ट सांस्कृतिक पुनर्जागरण का सुविकसित परिणाम कही जा सकती है । नवीन और प्राचीन के इस सामंजस्य से कवियों ने नये जीवन मूल्यों को भी प्रतिष्ठित किया है । इस युग के सांस्कृतिक स्वर प्रधान काव्य-चेतना पर विचार करते हुए हमारा ध्यान छायावाद की वृहत् त्रयी की ओर जाता है ।

छायावाद युग की इस कविता को विकसित करने का पूरा श्रेय प्रसाद जी को दिया जा सकता है और वे हमारी उक्त वृहतत्रयी के प्रथम कवि हैं ।इसलिए हम उन्हें छायावाद के प्रवर्तक के रूप में भी जान सकते हैं । उनकी 'कामायनी' छायावाद युग की सर्वोत्कृष्ट ~~बबबबवि~~ उपलब्धि है । कामायनी में प्रसाद जी ने भारतीय संस्कृति के तत्वों का निरूपण बहुत अच्छे ढंग से किया है । यह भी कहा जा सकता है कि

इस पर पूर्ववर्ती सांस्कृतिक पुनर्जागरण का बहुत प्रभाव पड़ा है । इसमें वेदों का पुनर्जागरण स्पष्ट देखा जा सकता है । कामायनी में वेदों आरण्यकों और ब्राह्मण ग्रन्थों का सार है, जिसे युग के अनुरूप ढालकर प्रस्तुत किया गया है । प्राचीन ऋग्वेद के प्रतीक मित्र, वरुण,सविता, उषा आदि का इसमें प्रयोग है तथा अनेक प्रकार के यज्ञों की चर्चा भी वेदों से ली गयी है। इसे हम स्वामी दयानन्द के आर्यसमाज का प्रभाव मान सकते हैं ।

सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य 'कामायनी' का हृदय व बुद्धि का संघर्ष है । जो कि आधुनिक युग के बौद्धिकवाद का प्रतीक है । मनु की बौद्धिक चेतना का पूर्ण विकास इड़ा सर्ग में हुआ है । जहां कवि यदि एक ओर श्रद्धा की आवश्यकता बताता है तो आधुनिक युग के लिए बुद्धि को भी उतना ही आवश्यक समझता है । सच्चे पथ के अन्वेषण के लिए उन्हें इड़ा की आवश्यकता है । यह 'कामायनी' पर सीधे तौर पर विज्ञान का प्रभाव माना जा सकता है । श्रद्धा को उन्होंने अध्यात्म की उच्च मनोभूमि पर प्रतिष्ठित किया है । उसे हृदय सत्ता का सुन्दर सत्य एवं ललित कलाओं का पुंजीभूत सत्य माना है । प्रसाद जी ने वैज्ञानिकता को महत्त्वपूर्ण बताकर भी उसे शाश्वत जीवन मूल्यों से सामंजस्य स्थापित करना ही नहीं अपितु जीवन मूल्यों के अधिष्ठान पर ही उन्हें स्वीकार करने का जो संदेश दिया है वह आधुनिक परिवेश में सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का द्योतन करता है । कामायनी के अनुसार बिखरे हुए शक्ति के कणों का संयोजन करके मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त की है । इसी से विश्व की दुर्बलता बल में परिणत होगी और मानव संस्कृति की चेतना का इतिहास सुन्दर होगा । शक्ति के इस संचार का वर्णन बहुत सुन्दर ढंग से करके प्रसाद जी ने मानवता के विजय की कामना की है -

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त
विकल बिखरे हों हो निरुपाय,

समन्वय उनका करे समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाय ।[७४]

प्रसाद जी विज्ञान और अध्यात्म के समुचित समन्वय की बात कहते हैं । वे विज्ञान से उत्पन्न होनेवाले दु:ख व अभिशाप को भूलते नहीं । इसलिए फिर विज्ञान को आवश्यक मानते हुए उसे फिर उसी कल्याणकारी श्रद्धा के पास वापस ले आते हैं । जिसकी छाया में समस्त मानवता का विकास है । वस्तुत: सांस्कृतिक पुनर्जागरण, राष्ट्रीय चेतना तथा अन्त में व्यापक मानवतावाद ये आधुनिक जन-जागरण के क्रमिक सोपान हैं । ये सोपान कामायनी के अतिरिक्त निराला की `राम की शक्ति पूजा` तथा `तुलसीदास` जैसी रचनाओं में भी देखे जा सकते हैं ।

छायावाद को राष्ट्रीय चिंतन का कलात्मक उत्कर्ष माना गया है जिसमें मानव जीवन की प्रवृत्तिमूलक आस्थाओं का भंडार है।[७५] प्रसाद ने अतीत दर्शन की स्वस्थ मान्यताओं को स्वीकार कर व्यावहारिक जीवन के विविध स्वरूपों को ग्रहण करते हुए भारतीय संस्कृति के गौरव का उद्घाटन किया है । उन्होंने अतीत का वर्तमान से और यथार्थ का अध्यात्म से सामंजस्य करते हुए मानवतावादी भूमिका प्रस्तुत की है । `चन्द्रगुप्त` नाटक का यह गीत विदेशी युवती कार्नेलिया के मुँह से कहलवाकर वह भारतीय संस्कृति का महत्तीकरण करते हैं -

अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा ।[७६]

सांस्कृतिक महत्ता का चित्र इन नाटकों में मिलता है वह राष्ट्रीय भावना की उपज है------ये नाटक नवभारत की राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना से ओतप्रोत हैं ।[७७] स्कन्दगुप्त का यह गीत अविस्मरणीय है -

हिमालय के आंगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार,
उषा ने हंस अभिनन्दन किया और पहनाया हीरक हार ।
+ + +
जियें तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे यही हर्ष ।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारत वर्ष ।।[७८]

प्रसाद जी के उद्बोधन गीत भी राष्ट्रीय चेतना के ही महत्त्वपूर्ण अंग हैं। जिनमें स्वतंत्रता की चेतना कूट-कूट कर भरी हुई है ।[७९]

इन नाटकों के अतिरिक्त प्रसाद जी की 'पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'शेरसिंह का शस्त्र समर्पण' शीर्षक कवितायें भी भारत के गौरव से अनुप्राणित हैं। 'महाराणा का महत्त्व' तो एक ऐतिहासिक काव्य ही है । जिसमें राष्ट्र प्रेम की ही भावना पूर्णतया निहित है, किन्तु यह भावना सांस्कृतिक चेतना से संपृक्त भी है ।

प्रसाद जी की राष्ट्रीय काव्य धारा क्षणिक उन्माद के रूप में न होकर पूर्णत: सांस्कृतिक है । समसामयिक आन्दोलनों का जो भावात्मक उत्कर्ष राष्ट्रप्रेम के रूप में उनके काव्य में दिखलाई पड़ता है । वह चिरंतन है । प्रसाद जी सच्चे अर्थों में युग द्रष्टा कवि होकर युग स्रष्टा बन पाये हैं । यद्यपि उन्हें प्रेम और सौन्दर्य का कवि माना जाता है तथापि राष्ट्रीय सांस्कृतिक उद्भावना में भी वे पीछे नहीं रहे हैं । उनके कवि हृदय पर यह दोनों धारायें समान रूप से बहती दिखायी पड़ती हैं जो कि एक समर्थ कवि की समर्थता हो सकती है ।

इस युग के दूसरे महत्त्वपूर्ण क ज्योतिर्धर के रूप में महाप्राण निरालाल हमारे समक्ष आते हैं । उनके विचार और अनुभूति प्रधानतया रामकृष्ण मिशन और स्वामी

विवेकानन्द के सांस्कृतिक उद्बोधन से अनुप्राणित एवं सुसंस्कृत हैं। वे अपने जीवन और साहित्य दोनों में समान रूप से क्रान्तिकारी थे। निराला लीक से हटकर व नयी लीक का निर्माण करने वाले समर्थ कवियों में अपनी गणना की है। उन्होंने प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों के साथ आधुनिक समाज के नवीन जीवन-मूल्यों का विराट चित्रफलक प्रस्तुत कर हिन्दी कविता को बहुत आगे बढ़ा दिया है। उनके काव्य में नैतिकता के प्रति एक आग्रह भी दिखायी पड़ता है। जिसके फलस्वरूप यथार्थवादी बौद्धिकता के साथ ही उनमें आदर्शवादी भावुकता का भी एक विशिष्ट संतुलन पाया जाता है।[80] उनका काव्य प्रगति और विकास का परिचायक है। साथ ही उनके मन पर भारतीय जीवन दर्शन का अमिट प्रभाव है। उनकी कविताओं में ~~एक~~ उस सांस्कृतिक आन्दोलन की ओजस्विता का पूर्ण प्रभाव है। जिसकी चर्चा हम द्वितीय अध्याय में विस्तृत रूप में कर आये हैं।

निराला का कवि हृदय समाज की विभीषिकाओं से अत्यन्त प्रभावित रहा है। वे ओज के कवि तो हैं ही, पर समाज के पीड़ित वर्ग के प्रति वे अपनी संवेदना ऐसे मार्मिक शब्दों में व्यक्त करते हैं कि एक वीर ~~पुरुष~~ पुरुष का हृदय भी करुणा से भीग जाय। भिक्षुक, विधवा, तोड़ती पत्थर, दान आदि उनकी भावप्रधान रचनाएँ हैं।

निराला की कविता राष्ट्रीयता को आधार बनाकर आगे चलती है। राष्ट्रीयता संस्कृति का सहारा लेकर आगे बढ़ती है। उनमें अतीत गौरव की भास्वरता है तो भविष्य के प्रति वे दृप्त प्रभात की कामना को लेकर चलते हैं। 'जागो फिर एक बार' उनकी इसी प्रकार की ओजपूर्ण कविता है। सांस्कृतिक जागरण की पावन वेला में कवि देशवासियों को उद्बोधित करता है। उनकी राष्ट्रीय भावना जो सांस्कृतिक आधार पर प्रतिष्ठित है, पूर्णतया 'महाराजा शिवाजी के पत्र में मुखरित हुई है। इस ऐतिहासिक पत्र में एक ओर भारत के अतीत की समृद्धि का वर्णन है और दूसरी ओर

~~और भारत के अतीत की समृद्धि का वर्णन है । इन्होंने और~~
देशवासियों को स्वदेश और स्वजाति के लिए मर-मिटने की प्रेरणा भी प्रदान की है । निराला जी ने शिवाजी को भारत की स्वतंत्रता के लिए कटिबद्ध एक वीर पुरुष के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसके मुख से अंग्रेजी शासन की चापलूसी करने वालों पर तीक्ष्ण व्यंग्य प्रहार किया है -

हाय री दासता,
पेट के लिए ही लड़ते हैं भाई- भाई,
कोई तुम सा भी ऐसा कीर्तिकामी ।[८१]

इनकी `यमुना के प्रति' , `खण्डहर के प्रति' कविताएं अतीत वैभव का स्मरण कराती हैं, दूसरी ओर वर्तमान के प्रति क्षोभ भी प्रकट करती हैं -

१- बता कहाँ अब वह बंशीवट ?
कहाँ गये नट नागर श्याम,
चल चरणों पर व्याकुल पनघन,
कहाँ आज वह वृन्दाधाम ।[८२]
\+ \+ \+
खण्डहर खड़े हो तुम आज भी ।
२- अद्भुत अज्ञात उस पुरातन के मलिन साज,
किंवा, ये यशोराशि,
कहते हो आँसू बहाते हुए,
आर्त भारत ! जनक हूँ मैं
जैमिनी, पतंजलि, व्यास ऋषियों का ।
तेरी ही गोद पर शैशव विनोद कर
तेरा है बढ़ाया मान
रामकृष्ण, भीमार्जुन, भीष्म नव देवों ने ।[८३]

निराला के काव्य की सांस्कृतिक चेतना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष ऐतिहासिक अवबोध का है जो कि उपर्युक्त रचनाओं में दृष्टिगत होता है। 'तुलसीदास' काव्य में मध्यकालीन ऐतिहासिक बोध एक मौलिक व्याख्या के साथ प्रस्तुत हुआ है। काव्य की आरंभिक पंक्तियां मध्यकालीन सांस्कृतिक पतन के प्रति संवेदना से म आरम्भ होती हैं -

अस्तमित आज रे- तमस्तूर्य दिंग मंडल
उर के आसन पर शिरस्त्राण,
शासन करते हैं मुसलमान
है उर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल।[८४]

वे पुराने प्रतीकों के माध्यम से आज की स्थिति को अवगत कराते हैं। इसके साथ ही इस काव्य का अंत भारतीय संस्कृति के पुनर्जागरण की आकांक्षा के नवीन अरुणोदय में होता है -

संकुचित खोलती श्वेत पटल,
बदली, कमला तिरती सुखजल,
प्राची दिगंत उर में पुष्कल रवि रेखा।[८५]

इसलिए इस काव्य में तुलसीदास का चित्रण भारतीय सांस्कृतिक पुनर्जागरण के सारस्वत उद्गाता के रूप में किया गया है।

निराला जी यदि देश की परतंत्रता प्रस्तुत करते हैं तो भविष्य की कमनीय कल्पना में भी वे पीछे नहीं रहते। वे भविष्य की स्वप्निल कल्पना के द्वारा आनंदित हो उठते हैं। उन्हें आशा ही नहीं, वरने- वरन् विश्वास है कि भारत का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल एवं गरिमा मंडित होगा। उनका यह आशावादी चित्र 'परिमल' में पूर्णरूपेण अंकित हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट है कि निराला की सांस्कृतिक राष्ट्रीय चेतना में राष्ट्र की नैतिकता, गरिमा, संस्कृति और सामाजिकता बोल उठी है। राजनीतिक और सामाजिक परिपार्श्वों के स्पन्दन भी स्पष्ट हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि निराला का कृतित्व उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग के सांस्कृतिक पुनर्जागरण का युगानुरूप विकसित ह रूप है, जिसके पीछे स्वामी विवेकानन्द की प्रेरणा एक सीमा तक क्रियाशील रही है।

नवीन हिन्दी कविता में सबसे श्रेष्ठ सृ ष्टि प्रतिमा लेकर श्री सुमित्रानन्दन पंत का विकास हुआ है। हिन्दी के क्षेत्र में पंत जी की कल्पना की शक्ति अजेय, उसका नवोन्मेष अप्रतिम है।[८६] पंत जी वास्तव में कल्पना के द्वारा प्रेम और सौन्दर्य की रचनाएँ करते हैं। उनकी सुकुमार नारी-जन्य कल्पना प्रकृति में भी सुकुमारता का संधान करती हुई काव्य में अवयव ग्रहण करती है। पंत जी ने इन कविताओं के अतिरिक्त समाज, धर्म, दर्शन आदि पर भी कुछ कविताएँ लिखी हैं। चूँकि यहां पर हमें केवल राष्ट्रीय-सांस्कृतिक रचनाओं की चर्चा करनी है, इसलिए उन्हीं का वर्णन करेंगे।

पंत जी पर युगगत सांस्कृतिक आन्दोलन का यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। उन्होंने स्वयं उत्तरा की भूमिका में लिखा है कि -"पल्लव काल में मैं परमहंस देव के वचनामृत तथा स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के विचारों के संपर्क में आ गया था।[८७] उनके काव्य पर अरविन्द दर्शन का भी प्रभाव है। छायावादी काव्य की वैयक्तिकता को वे लौकिकता में परिणत करने की चेष्टा करते हैं। नवीन मानवतावादी चेतना का समन्वयात्मक विश्लेषण करते हुए उनकी काव्य-धारा आगे बढ़ती है। उन्होंने स्वयं लिखा है कि - मैं अपने युग की चेतना में छाए हुए अन्धविश्वासों तथा निरर्थक रूढ़ि-रीतियों के प्रेतों से लड़ा हूं। मैंने विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों तथा जातियों वर्गों में बैठे हुए लोगों को अपनी काव्य-चेतना के प्रांगण में आमंत्रित कर उनको एक दूसरे के

पास लाने का प्रयत्न किया है । भौतिकता तथा आध्यात्मिकता को एक ही सत्य के दो पहलुओं के रूप में ग्रहण कर उन्हें लोक-कल्याण के लिए महत्तर सांस्कृतिक समन्वय में एक दूसरे के पूरक की तरह संयोजित करना चाहा है ।[८८] अपने प्रगीतों के माध्यम से उन्होंने मनुष्य के लिए नवीन सांस्कृतिक हृदय को जन्म देने की आवश्यकता बतलाई है । 'युगवाणी' कविता उनकी सत्य ही युगवाणी है । जिसमें आज के युग की संस्कृति पर तीखा व्यंग्य है, वह श्रमजीवी के पवित्र जीवन में श्रम की प्रतिष्ठा बतलाई है -

वह पवित्र है, वह जग के कर्दम से पोषित,
वह निर्माता : श्रेणि, वर्ग, धन बल से शोषित ।
मूढ़ अशिक्षित, सभ्य शिक्षितों से वह शिक्षित
विश्व उपेक्षित, शिष्ट संस्कृतों से मनुजोचित ---[८९]

पंत जी भारत के अतीत की वैभव सम्पन्नता को भूल नहीं पाये हैं, उन्होंने विदेशी शासन के अत्याचारों से शोषित-पीड़ित जनता के सांस्कृतिक पतन को दर्शाया है। भारत जो कि समृद्धशाली था । आज किस प्रकार दुःख दैन्य का घर बन गया है । यही वे अंकित करते हैं -

ओ विश्व का स्वर्ण स्वप्न, संसृति का प्रथम प्रभात,
कहाँ वह सत्य, वेद विख्यात ?
दुरित दुःख दैन्य न थे जब ज्ञान,
अपरिचित जरा मरण भ्रू-पात ।[९०]

भारतमाता की वंदना करते हुए कवि आज की स्थिति का ज्ञान देते हुए अभावग्रस्त, शोषित, दलित क्षुधित और मूढ़ समाज का चित्र प्रस्तुत करता है। कवि ने भारत माता को ग्रामवासिनी माना है क्योंकि सच्चा भारत तो गाँवों में है -

भारत माता,
ग्रामवासिनी,
तीस कोटि संतान नग्न,
अर्ध क्षुधित, शोषित निरस्त जन,
मूढ़ असभ्य अशिक्षित निर्धन,
नतमस्तक,
तरु तल निवासिनी[६१]

पन्त जी विज्ञान के महत्त्व को स्वीकार करके भी मानवतावादी जीवन-मूल्यों का समर्थन करते हैं -

विज्ञान ज्ञान की शत किरणें,
जनपथ में बरसाते आओ,
मुरझाए मानव मुकुलों को
छूकर नव छवि में विकसाओ।[६२]

कवि ने सांस्कृतिक उन्मेष द्वारा ही समाज निर्माण का सुखद स्वप्न देखा है। उनका कहना है कि 'मनुष्य को बाहर फैलना व भीतर उठना है', उसे राष्ट्र, जाति, वर्ग के ऊपर मनुष्य बनना है। बाह्य जीवन के समस्त साधनों को विकसित करने के लिए श्रम करना और अन्तर्जीवन को समझने के लिए साधना करनी है, क्योंकि बिना अन्तर्जीवन को समझे बहिर्जीवन न संयोजित हो सकता है, न उन्नतिशील बन सकता है'[६३] कवि की अन्तर्राष्ट्रीय चेतना और विश्व-संस्कृति की स्थापना स्तुत्य है।

नारी के उदात्त रूप की प्रतिष्ठा :

उन्नीसवीं शती के सांस्कृतिक जागरण में नारी की स्थिति में सुधार एक

आवश्यक कार्य था । उसको हिन्दी साहित्य में भी अपनाया गया है । भारतेन्दु युग में नारी की शोचनीय दशा का वर्णन मिलता है । द्विवेदीयुग में आकर नारी-सुधार का नारा कवियों ने दिया, किन्तु छायावादी युग में आकर नारी एक उदात्त मनोभूमि की संरक्षिका बनी । छायावादी कविता में नारी के प्रत्येक रूप का अंकन स्वस्थ दृष्टिकोण को लेकर हुआ है । उसे पुरुष की प्रेरणादायिनी, स्त्रोतस्विनी कहकर कवियों ने उसकी महनीयता को बढ़ाया है । महादेवी वर्मा ने तो समाज के सामंजस्य के लिए नारी को भी उतना ही आवश्यक बतलाया है जितना कि पुरुष को । वे लिखती हैं- 'पुरुष समाज का न्याय है, स्त्री, दया, पुरुष प्रतिशोधमय क्रोध है । स्त्री क्षमा, पुरुष शुष्क कर्तव्य है । स्त्री सरस सहानुभूति और हृदय की प्रेरणा है । जिस प्रकार युक्ति से काटे हुए काष्ठ के छोटे-बड़े विभिन्न आकार वाले खण्डों को जोड़कर हम अखण्ड चतुष्कोण या वृत्त बना सकते हैं, परन्तु उनकी विभिन्नता नष्ट करके तथा सबको समान आकृति देकर हम उन्हें किसी पूर्ण वस्तु का आकार नहीं दे सकते, उसी प्रकार स्त्री पुरुष के प्राकृतिक मानसिक वैपरीत्य द्वारा ही हमारा समाज सामंजस्यपूर्ण और अखण्ड हो सकता है। उनके बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव से नहीं ।'[६४]

इस युग के कवियों ने नारी मुक्ति की कामना उच्च स्वर से की है। समाज का मेरुदण्ड नारी है, यदि उसका विकास नहीं होगा तो समाज का विकास असंभव है। निराला इस मुक्ति का घोष उच्च स्वर से करते हैं -

तोड़ो तोड़ो कारा,
पत्थर की निकलो फिर गंगा जल धारा
गृह गृह की पार्वती,
पुन: सत्य सुन्दर-शिव को संवारती
उर उर की बनो आरती
भ्रान्तों की निश्चल ध्रुव तारा
तोड़ो तोड़ो कारा---------[६५]

निराला जी नारी को अबला न मानकर उसकी शक्ति के रूप में उपासना करते हैं। 'पंचवटी प्रसंग', 'तुलसीदास' तथा 'राम की शक्ति पूजा' में उनका नारी विषयक चिंतन दिव्य स्वरूप लेकर प्रस्तुत हुआ है।

पंत जी तो पूर्णरूपेण सुकुमार कवि ही हैं, अतः उनकी दृष्टि स्त्रियों के दुःख पर अत्यधिक पड़ी है, वे नारी के व्यक्तित्व की स्थापना करना चाहते हैं किन्तु इसके साथ ही वे यह भी जानते हैं कि मात्र कल्पना से यथार्थ को विस्मृत नहीं किया जा सकता। तभी तो वह आत्महीनता से ऊपर उठाने के लिए उसकी मुक्ति के लिए गंभीर स्वर से शंखनाद करते हैं -

मुक्त करो नारी को मानव,
चिरवंदिनी नारी को,
युग युग की बर्बर कारा से,
जननि-सखी प्यारी को।[६६]

नारी का सबसे अधिक उज्ज्वल एवं उत्कृष्ट रूप प्रसाद के काव्य में मिलता है। प्रसाद ने नारी का बड़ा सात्विक, भव्य और भारतीय संस्कृति के अनुकूल चित्रण प्रस्तुत किया है। उनके साहित्य में नारी जागरण का स्वर्ण विहान है। उनकी नारियाँ राष्ट्रीय जागरण में भाग लेती हैं। स्वच्छन्द होते हुए भी सांस्कृतिक गरिमा से युक्त हैं।[६७] वे नारी को श्रद्धामयी और विश्वासमयी के रूप में देखते हैं -

नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
        विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष स्रोत सी बहा करो,
        जीवन के सुन्दर समतल में।[६८]

वन्त उनके नाटकों में नारी का और भी उदात्त और भास्वर रूप प्रकट हुआ है ।

इस प्रकार देखा जाय तो छायावादी काव्य में नारी को गरिमामंडित स्थान देकर इस काल के कवियों ने अपनी संस्कृति की रक्षा की है । विदेशी शासन के अत्याचार से पीड़ित नारी को पुन: समाज में यथोचित स्थान देके देकर उसका सम्मान बढ़ाकर भारतीय संस्कृति के उपयुक्त युगीचित कार्य किया है ।

परवर्ती युग :

छायावादी कवि प्रेम और सौन्दर्य के कवि होने के साथ-साथ सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना के भी उद्गाता हैं किन्तु इन मुख्य कवियों के अतिरिक्त इस युग में कुछ कवि ऐसे भी हुए हैं जिन्होंने केवल राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविताओं की रचना की। इन कविताओं में कवि संभवत: तीन लक्ष्य लेकर चले, विदेशी शासन के प्रति तीव्र आक्रोश, सांस्कृतिक पुनरुत्थान एवं ब्रिटिश सभ्यता के आघात के विरुद्ध आत्म-गौरव की भावना की प्रतिष्ठा तथा आधुनिक मूल्यों के आलोक में राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था का पुनर्विचार तथा पुनर्गठन ।[६६]

इन कविताओं का काल-फलक अत्यन्त व्यापक है ।जो स्वतंत्रता के पश्चात् भी युगानुरूप परिस्थितियों के साथ प्रकारान्तर से पूर्ववर्ती चेतना की ही पूरक कही जा सकती है । स्वाधीनता से पूर्व की कविताओं में दो भावनाएँ विशेष रूप से व्यक्त हुई हैं- एक ओर कवियों ने भारत की आंतरिक विसंगतियों और विषमताओं को दूर करने के लिए देश की जनता का आह्वान किया और दूसरी ओर विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए स्वतंत्रता संग्राम में प्रवृत्त होने की प्रेरणा दी । माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान ने केवल राष्ट्रप्रेम

को ही मुखरित नहीं किया अपितु वे हमारी स्वतंत्रता संग्राम के सक्रिय सेनानी भी रहे हैं। परिणाम स्वरूप उनकी रचनाओं में अनुभूति की सच्चाई एवं एक सशक्त आवेश दिखायी पड़ता है। माखनलाल चतुर्वेदी, 'कैदी व कोकिला' तथा 'हिम किरीटनी' संग्रह की अनेक कविताओं में पराधीनता के अहसास की भावना विविध रूपों में व्यक्त हुई है। पराधीनता की लौह श्रृंखला तथा ब्रिटिश सरकार के दमन के विरुद्ध संघर्ष की भावना, देश की वर्तमान दशा के निवारण के उपक्रम आदि इस प्रवृत्ति में लक्ष्य किये जा सकते हैं। बलिदानी भावना से प्रेरित उनकी रचनाओं में इस चेतना को दृष्टिगत किया जा सकता है। दूसरा उल्लेखनीय तथ्य यह है कि प्राचीन संस्कृति के पुनरुत्थान की प्रवृत्ति में अतीत के गौरव गान के साथ स्वर्णिम भविष्य की कल्पना को देखा जा सकता है। तृतीयत: राजनीति, धार्मिक और सामाजिक व्यवस्था पर पुनर्विचार तथा पुनर्गठन की प्रवृद्धि अनेक धरातलों पर मिलती है।

राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भावापन्न कवियों ने अतीत के गौरव गान के साथ ही वर्तमान दुर्दशा का करुण चित्र खींचा है। भारत का अतीत अत्यन्त गरिमा-मंडित तथा प्रेरणा का स्रोत रहा है। परतंत्रता की करुण वेदना ने जहाँ कवियों को मर्माहित किया था, वहीं अतीत की गौरवमयी समृद्ध परंपरा ने उनके अन्तर को आलोकित भी किया है। मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन निराला, सुभद्राकुमारी चौहान, सियाराम शरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, उदय-शंकर भट्ट दिनकर आदि कवियों ने अतीत के गौरव का बहुत ही प्रोज्ज्वल एवं प्रेरणास्पद चित्र प्रस्तुत किये हैं। जिनमें प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त तथा निराला की रचनाओं पर हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में विचार कर आये हैं। नवीन जी की 'हम विषपायी जनम के', सुभद्राकुमारी चौहान की मुकुल, सियाराम शरण गुप्त की मौर्य विजय, सोहनलाल द्विवेदी की भैरवी एवं पूजागीत, उदयशंकर भट्ट की 'तक्षशिला' तथा दिनकर कृत 'रेणुका' व 'हुंकार' आदि कविताएं और काव्य संग्रह भारत के सांस्कृतिक गौरव, राष्ट्रीय चेतना और तदनुरूप ऐतिहासिक अवबोध को व्यक्त

करती हैं । दिनकर जी की कविताएँ रूढ़ि के प्रति विद्रोह, नवयुग की स्फूर्ति और ओजस्विता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं । जिन पर अगले अध्यायों में प्रसंगानुसार विचार किया जाएगा । यहां यह लक्ष्य कर लेना प्रासंगिक होगा कि नयी परिस्थितियों के सन्दर्भ में आधुनिक मूल्यों की प्रतिष्ठा का उन्मेष भी उनकी अनेक रचनाओं में प्रकट हुआ है । सांस्कृतिक गौरव की अधिकांश रचनाएँ राष्ट्रीय चेतना की भी प्रेरक रही हैं । उदाहरणार्थ सुभद्राकुमारी चौहान की 'झाँसी की रानी' कविता तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलनों में विशेष लोकप्रिय रही ।

उपर्युक्त कविता(छायावादी) के बाद एक ऐसी काव्यधारा उत्पन्न हुई जो जनवादी चेतना को लेकर आगे बढ़ी, जिसे हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है । यह ऐसी काव्य धारा है जो मार्क्सवादी दर्शन के आलोक में सामाजिक चेतना और भावबोध को अपना लक्ष्य बनाकर चली ।[१००] प्रगतिवादी आंदोलन से पूर्णतया प्रतिबद्ध कवियों की कृतियां जनवादी होकर भी लोकमानस से उतनी नहीं जुड़ पायीं, जितनी कि राष्ट्रीय धारा की रचनाएँ दिखायी पड़ती हैं, किन्तु दूसरी ओर यह नया भावबोध एक सीमा तक उन कवियों की कृतियों में भी आया जो छायावाद तथा राष्ट्रीय -सांस्कृतिक काव्य धारा के कवि थे ।

युगीन प्रवृत्तियों का साहित्य में आकलन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है । इस समय देश परतंत्रता की आग में जलकर छुटकारा पाने का प्रयास कर रहा था । अंग्रेजों का अत्याचार तो था ही । साथ ही युद्धों की विभीषिका के कारण आर्थिक संकट ने देश को दीन-हीन बना दिया था । उसी समय रूस में साम्यवादी आंदोलन का अभ्युदय हुआ । जिससे हिन्दी के कवि भी अछूते नहीं रहे और यह लहर भारत में आकर हिन्दी के कवियों को भी प्रभावित कर गयी । ये कवि मुख्यत: सामाजिक

यथार्थ को लेकर चले हैं। चूंकि यह कविता जनता के जीवन की बात कहना चाहती थी। इसलिए छायावाद की रेशमी भिलमिलाहट को छोड़कर सुस्पष्ट व प्रचलित भाषा को लेकर जन-जीवन के चित्र अंकित करने लगी। यद्यपि यह प्रवृत्ति अधिक समय तक नहीं चली, क्योंकि इसकी कुछ सीमाएँ हो सकती थीं। परन्तु इन सबकी अपेक्षा इसका हिन्दी काव्यधारा के विकास में महत्व है। उसने काव्य को व्यक्तिवादी यथार्थ के बन्द कमरे से निकाल कर जन-जीवन के बीच प्रवाहित कर दिया। इसके मुख्य कवि निराला, पंत, केदारनाथ, रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, त्रिलोचन, नागार्जुन आदि हैं। जैसा कि लक्ष्य किया जा चुका है कि इन कवियों के अतिरिक्त हिन्दी की राष्ट्रीय काव्य धारा के कवि भी इस युग के समानान्तर चलते हैं। वे भी इस जनवादी चेतना से प्रभावित तो होते हैं, किन्तु प्राय: वे अतीत के उज्ज्वल पक्षों को लेकर ही युगीन चेतना को काव्य में प्रस्तुत करते हैं। श्यामनारायण पाण्डेय की हल्दीघाटी, जौहर, तुमुल, शिवाजी इस युग की सशक्त रचनाएँ हैं। दिनकर की रसवन्ती कुरुक्षेत्र इन्द्रगीत, सामधेनी, बापू आदि इस क धारा की अन्य रचनाएँ हैं। पूर्ववर्ती युगों की सामाजिक एवं मानवतावादी चेतना भी अनेक कृतियों में अंकित हुई है। अत: निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा युगीन प्रवृत्तियों, परिस्थितियों तथा नयी विचारधारा के अनेकविध वैचारिक आयामों के कूलों को स्पर्श करती हुई प्राय: स्वतंत्रता प्राप्ति तक चली आयी है। इस दिशा में हमारे आलोच्य कवि दिनकर का काव्य राष्ट्रीय-सांस्कृतिक विचारधारा के नये आयामों के प्रति सतत जागरूक कहा जा सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात कला और शिल्प के प्रयोग के जो भी अभियान रहे हों, किन्तु वस्तुत: हिन्दी कविता में युगीन चेतना की ध्वनि कभी भी अवरुद्ध नहीं कही जा सकती। इस काल-खण्ड में देश को तीन ऐसे बड़े युद्धों का सामना करना पड़ा, जिनमें उसके अस्तित्व एवं अस्मिता के समक्ष एक गंभीर प्रश्नचिह्न खड़ा होता रहा।

चीन के साथ हुए युद्ध ने देश भर की राष्ट्रीय चेतना को झकझकोर दिया और सहस्त्रावधि कविताएँ उसे प्रतिध्वनित करती हुई पूर्व निर्दिष्ट चेतना का संचार करती रहीं। यही अवस्था पाकिस्तान के साथ हुए दोनों युद्धों के समय रही। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि हिन्दी के प्राय: सभी कवि अपने उक्त युगीन दायित्व के प्रति सदा जागरूक रहे।

दिनकर उपरिनिर्दिष्ट भाव चेतना के सशक्त वैतालिक कहे जा सकते हैं। इनकी कविता में छायावादी कल्पनाशीलता, रेशमी झिलमिलाहट, सौन्दर्य चेतना एवं श्रृंगारिकता तो मिलती है। पर वे छायावाद की इस कमनीय कल्पना के आकाश से यथार्थ की कठोर भूमि पर अपने चरण रखते हैं। जिसमें युगधर्म के अनुसार विद्रोह, क्रांति, तूफान, प्रतिशोध, हिंसा आदि भावनाएँ अत्यन्त प्रबल रूप से अंकित हुई हैं। सामाजिक चेतना उन्हें पूंजीवादी शासन के विरुद्ध क्रान्ति का आह्वान कराती है। तो दूसरी ओर वे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानवता की स्थापना करना चाहते हैं। उनकी काव्य चेतना में व्यक्तिवादी व समष्टिवादी दोनों रूप मिलते हैं। उनकी समग्र साहित्य साधना से स्पष्ट है कि युग धर्म के प्रति कवि दिनकर हमेशा जागरूक रहे हैं। अनुभूति की तीव्रता के साथ ही चिंतन की प्रधानता उनके काव्य में मिलती है। अत: यह कहना समीचीन होगा कि भारतेन्दु युग से जिस राष्ट्रीयता का सूत्रपात हुआ था। दिनकर में वह `दिनकर` बनकर अपनी उर्जस्वित रश्मियां आलोकित करता है। उनका काव्य क्रांति, ओज, शौर्य की परिधि में घूमता है। हमारे क्रान्ति युग का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व कविता में इस समय दिनकर कर रहा है। क्रांतिवादी को जिन-जिन हृदय मंथनों से गुजरना होता है। दिनकर की कविता उनकी सच्ची तस्वीर रखती है।[१०१] बेनीपुरी जी का यह मत उनके लिए सर्वथा उपयुक्त है। परवर्ती अध्यायों के विवेचन में हम यह लक्ष्य कर सकेंगे कि उनकी कविता-कामिनी अपनी प्रोज्ज्वल राष्ट्रीय भावना तथा समृद्ध सांस्कृतिक विचार-मणि -राजि से हिन्दी साहित्य के अनेक रत्नों में से एक है।

सन्दर्भ संकेत :

१- रैनेवैलेक एवं आस्टिन वारेन, थ्योरी आफ लिटरेचर, पृ० १२४

२- वही, पृष्ठ-वही

३- वही, पृष्ट-द्रष्टव्य ।

४- वही, द्रष्टव्य-वही,

५- द्रष्टव्य, वही, पृष्ठ-वही

६- सं० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० १३५

७- डा० रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग, भूमिका, पृ० १०

८- वही, पृष्ठ-१३

९- राधाचरण गोस्वामी, विधवा विलाप, पृ० ८२

१०- श्रीधर पाठक, मनोविनोद, पृ० ७६

११- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग-२, मुकरी, पृ० ८१२

१२- प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ० १६२

१३- ,, भाग-१, भारत दुर्दशा, पृ० १३२

१४- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, वही, द्रष्टव्य, पृ० १३२,१३५

१५- प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ० ६३१, सं० प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय, दि०ना० उपाध्याय ।

१६- वही, पृ० वही ।

१७- रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास-पृ० ५४२

१८- प्रतापनारायण मिश्र, ब्राह्मण पत्रिका, खण्ड५,संख्या५ पृ० ५

१९- प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ० २८५-२८६,सं० प्रभाकरेश्वर प्रसाद उपाध्याय, दि० ना० उपाध्याय ।

२०- भारतेन्दु ग्रन्थावली, भाग-२, पृ० ७३६,सं० ब्रजरत्नदास

२१- वही, भाग-१, पृ० ४७०,भारत दुर्दशा,सं० ब्रजरत्नदास ।

२२- किशोरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि,पृ०२२८

२३- द्रष्टव्य, प्रेमघन सर्वस्व, प्रथम भाग, पृ०२८५-२८६ ।

२४- किशोरीलाल गुप्त, भारतेन्दु तथा अन्य सहयोगी कवि, पृ० २२८

२५- भारतेन्दु ग्रंथावली, भाग-१, नीलदेवी, पृ० ५३१ सं० बे ब्रजरत्नदास ।

२६- वही, भारत दुर्दशा, पृ० ४६६

२७- सं० श्यामसुन्दरदास, राधा कृष्ण ग्रन्थावली, पृ० ८

२८- प्रेमघन सर्वस्व, भाग-१ पृ० ५४६ सं० प्रभाकरेश्वरप्रसाद दि० ना० उपाध्याय ।

२९- भारतेन्दु ग्रंथावली, भाग-२, पृ० ८०२-८०३, सं० ब्रजरत्नदास ।

३०- वही, द्रष्टव्य, पृ० ८६६

३१- वही, पृ० ८६७

३२- चहहुं जु सांचहु निज कल्यान, तौ सब मिलि भारत संतान ।
जपौ निरन्तर एक जबान, हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान ।प्रतापनारायण मिश्र ।

३३- प्रेमघन सर्वस्व, आनन्द बधाई, पृ० १४०

३४- डा० किशोरीलाल गुप्त, भारतेन्दु और अन्य सहयोगी कवि, पृ० ४२१

३५- सं० देवीसहाय, धर्म दिवाकर(पत्र) कलकत्ता ।

द्विवेदी युग :

३६- डा० शम्भुनाथ सिंह, हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका, पृ० १६६

३७- अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध, प्रियप्रवास, द्वादस सर्ग, पृ० ६६-६७

३८- वही, भूमिका, पृ० ३०

३९- मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ० १६६-१६७

४०- रामनरेश त्रिपाठी, अन्वेषण, पृ० १४

४१- जयशंकर प्रसाद, कानन कुसुम, पृ० १०(रचनाकाल सं० १९६६ से १९७४ के बीच)
अष्टम संस्करण, शीर्षक, नमस्कार,

४२- मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती-
हम कौन थे, क्या हो गये और क्या होंगे अभी ।
आओ विचारें आज, मिलकर ये समस्यायें सभी ।।

४३- गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, मर्यादा, भाग-१५

४४- मैथिलीशरण गुप्त, भारत-भारती, पृ० १७०-१७१ ।

४५- वही, पृ० १७१

४६- सं० नगेन्द्र, उद्धृत, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ५०७-५०८

४७- हिंदी कविता में युगान्तर, संदर्भित, पृ० १४७

४८- मैथिलीशरण गुप्त, यशोधरा, पृ० १८

४९- सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, परिमल, पृ० १२६(सं०२००५ चतुर्थ संस्करण)

५०- मैथिलीशरण गुप्त, स्वदेश संगीत, पृ० १३-१४

५१- सियारामशरण गुप्त, मौर्य विजय, पृ० १९-२०

५२- श्रीधर पाठक, बन्दहु मातृ भारत धरनि-------

५३- मैथिलीशरण गुप्त, मंगलघट, पृ० ६

५४- महावीरप्रसाद द्विवेदी, सुमन, जन्मभूमि, पृ० ७६-७७

५५- हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ४४२

५६- लक्ष्मीनारायण सुधांशु, राष्ट्रीय कविता, साहित्यिक निबंध, पृ० ३३

५७- डा० शंभूनाथ पाण्डेय, आधुनिक हिंदी काव्य में निराशावाद, पृ० ५७

५८- गुलाबराय, काव्य विमर्श, पृ० १९७

५९- सोहनलाल द्विवेदी, विक्रमादित्य, पृ० ८१

६०- सं० महावीरप्रसाद द्विवेदी, सरस्वती, भाग-२, संख्या-३, मर्यादा, लै० शंकर ।

६१- हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४४२

६२- डा० नगेन्द्र, हिंदी कविता की मुख्य प्रवृत्तियां, पृ० ३०

६३- आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, नया साहित्य, नये प्रश्न, पृ० ३
६४- महावीरप्रसाद द्विवेदी, गद्यायन : हिंदी गद्य का श्रेष्ठ संकलन, पृ० ७२
सं० रामरतन भटनागर ।
६५- शीर्षक साहित्य की महत्ता, वही, द्रष्टव्य, पृ० ६६
६६- डा० रामरतन भटनागर, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ३३२
६७- हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० ४१२
६८- वही, द्रष्टव्य-पृ० ४४०
६९- वही, पृ० ४४४

छायावाद युग :

७०- आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, आधुनिक हिंदी साहित्य,छायावाद,पृ०३१६-३२०
७१- जयशंकर प्रसाद, काव्य कला और निबंध, पृ० १४६
७२- सुमित्रानंदन पंत, रश्मिबंध, परिदर्शन, पृ० १६
७३- सं० डा० नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का वृहद् इतिहास, दशम खण्ड,पृ०८-९,
शीर्षक- परिवेश ।
७४- जयशंकर प्रसाद, कामायनी, इड़ा सर्ग, पृ० १७०
७५- डा० सन्तोषकुमार तिवारी, छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना,पृ०१०६
७६- जयशंकर प्रसाद, चन्द्रगुप्त, पृ०
७७- डा० रामरतन भटनागर, प्रसाद की विचारधारा, पृ० २१-२२
७८- जयशंकर प्रसाद, स्कन्दगुप्त, पृ० १५०-१५१
७९- प्रसाद, चंद्रगुप्त, पृ० १७०
८०- डा० विजयपाल सिंह, छायावाद के प्रतिनिधि कवि, पृ० २३
८१- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, परिमल, महाराजा शिवाजी का पत्र,पृ०१९७
८२- द्रष्टव्य, वही, पृ० ४६(यमुना के प्रति)
८३- द्रष्टव्य, वही, अनामिका, पृ० ५८

८४- निराला, तुलसीदास, पृ० ११

८५- द्रष्टव्य, वही, पृ० वही ।

८६- आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, हिंदी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, शीर्षक: श्री सुमित्रानंदन पंत, पृ० १५०

८७- सुमित्रानंदन पंत, उत्तरा, पृ० २२

८८- वही, द्रष्टव्य, मुक्ताभ, पृ० ११

८९- वही, युगवाणी, पृ० ५२

९०- वही, द्रष्टव्य, पल्लव, पृ० १४७

९१- वही, द्रष्टव्य, ग्राम्या, पृ० ४८

९२- वही, द्रष्टव्य, युगवाणी, पृ० ७०

९३- हरिवंशराय बच्चन, कवियों में सौम्य पंत, पृ० १०५

९४- महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियां, पृ० १४-१५

९५- निराला, अनामिका, शीर्षक-मुक्ति, पृ० १३७

९६- सुमित्रानंदन पंत, युगवाणी, शीर्षक-नारी, पृ० ६४

९७- डा० सन्तोषकुमार तिवारी, छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना, शीर्षक-प्रसाद । प्रगतिशील तत्व, पृ० ८४

९८- जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ० १०६

९९- डा० रामदरश मिश्र, हिन्दी कविता, आधुनिक आयाम, पृ० ५१

१००- सं० नगेन्द्र, लेखक-डा० रामदरश मिश्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रगतिवाद, पृ० ६३०

१०१- सं० सावित्री सिन्हा, दिनकर, लेखक-रामवृक्ष बेनीपुरी, शीर्षक-क्रांति का कवि, पृ० २